

दीवानचन्द शर्मा

विचार-तरंग

जीवन और जगत् सम्बन्धी स्फुट लेख

प्रो० दीवानचन्द शर्मा
संसद्-सदस्य

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मूल्य : दो रुपए पचास नए पैसे
प्रथम संस्करण : नवम्बर, १९५८
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

दो शब्द

यह स्फुट लेख मैंने समय-समय पर अपनी विचार-तरंग के अनुसार लिखे। इनको मैं मैसूर की एक साप्ताहिक पत्रिका में भेजता रहा और उस पत्र ने बड़ी प्रसन्नता से इनको प्रकाशित किया, लेकिन मैंने इन्हें अपने उपनाम 'परदेसी' से प्रकाशित करवाया। जब इन लेखों पर पाठकों ने अपने विचार प्रकट किए तो लोगों ने इस पुस्तक के लेखक के बारे में अजीब-अजीब अन्दाज लगाए—जिन्हें पढ़कर मुझे प्रसन्नता भी हुई और आश्चर्य भी।

इस पुस्तक में मैंने अनेक घटनाओं और व्यक्तियों के प्रति अपने भाव और विचार प्रकट किए हैं। यह विचार मेरे निजी हैं और इनको मैंने स्वान्तःसुखाय लिखा है। आशा है कि जो आनन्द मैंने इन्हें लिखकर पाया है, वही आनन्द पाठक भी इन्हें पढ़कर पाएंगे।

—दीवानचन्द शर्मा

क्रम

पराये अनुभव से शिक्षा | १

शिक्षित व्यक्ति अपने अवकाश के समय का पयोग भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। कई तो उस यान्त्रिक विनोद से अपने मन को बहलाना चाहते हैं, जो कि उन्हें सिनेमा से प्राप्त होता है, और कई साधारण शारीरिक व्यायामों मे भाग लेते हैं। टेनिस मनोविनोद का एक साधन है, और साथ ही चिन्ता को दूर करने का उपाय, और टेनिस-कोर्ट में बिताए हुए दो-तीन घण्टे भी शारीरिक व मानसिक उल्लास देने का साधन होते हैं। कुछ लोग संगठित रूप मे परोपकार करने में जुट जाते हैं, और दीन-दुखियों की अवस्था को सुधारने का यत्न करते हैं। बहुत-से लोग किसी क्लब के मेम्बर बनना पसन्द करते हैं, जहाँ कि वे साधारण मनोविनोद अथवा फैशनेबल जुए के खेल से अपने समय को नष्ट कर सकें। बहुत-से लोग उन पुस्तकों को पढ़ने में रुचि रखते हैं, जिन्हें 'विनोदी साहित्य' कहा जाता है, और कुछ व्यक्ति समाचारपत्रों को पढ़कर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

इन लोगों मे सबसे अधिक मनोरंजक वे लोग हैं, जिनका सम्बन्ध न्यायविभाग से है। एक समय था, जब कि उनमें से कइयों ने सरस्वती की सेवा की थी। महादेव गोविन्द रानाडे[1] ने एक पुस्तक लिखी थी, जिसे मराठी इतिहास के उच्च कोटि के ग्रन्थों में गिना जाता है। एक और जज ने, जो कि अंग्रेज था, हमारे देश की तन्त्र विद्या के सम्बन्ध में अनुसन्धान किया था, और इस विषय पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे थे। एक और व्यक्ति था, जिसने भारत की कई सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का यत्न

१. महादेव गोविन्द रानाडे बम्बई हाईकोर्ट के जज थे। वे न्याय-निपुण होने के साथ ही विद्याप्रेमी भी थे। मुख्य ग्रन्थ : 'मराठों की शक्ति का उत्कर्ष।'

किया। ये महान् व्यक्ति थे, जिन्होंने विद्वत्ता, गवेषणा व सामाजिक सुधार के क्षेत्र में चिरस्मरणीय कार्य किया।

इन अद्भुत शक्ति वाले लोगों का युग तो अब नहीं रहा, परन्तु न्याय-विभाग के कार्य के अतिरिक्त और कार्य करने की अभिलाषा अब भी विद्यमान है, और अब भी इस गौरवशाली विभाग में कई ऐसे व्यक्ति हैं, जो कि साहित्यिक महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर काम करते हैं। कुछ समय हुआ जब कि उनमें से एक ने मुझे प्रश्नों की एक सूची भेजी, जिसमें कई प्रकार के बेढंगे प्रश्न पूछे गए थे। उदाहरणार्थ, मुझसे पूछा गया था, "आपका विवाहित जीवन सुखी रहा है या नहीं? आपके कितने बच्चे हैं? क्या आप सन्तान निरोध में विश्वास रखते हैं? क्या आपने अपना घर बना लिया है? आप गाँव में रहना पसन्द करते हैं या शहर में?" यह कुरेद-कुरेदकर पूछे गए प्रश्न अनेक व भिन्न-भिन्न प्रकार के थे। इस प्रश्नावलि को पढ़कर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो मेरे लिए एक जाल बिछाया गया है। मैं यह न समझ सका कि मुझे इन प्रश्नों का उत्तर इन्कम टैक्स-विभाग के लाभ के लिए देना है या टैम्प्रेंस सोसायटी (मादक द्रव्यों के विरुद्ध प्रचार करने वाली सभा) के लिए। कुछ प्रश्नों पर मुझे खीझ-सी आई, और कुछ ऐसे थे, जिन्होंने मुझे चक्कर में डाल दिया या भयभीत-सा कर दिया। मैंने प्रश्न-सूची को उठाकर एक ओर रख दिया, परन्तु मुझे उसके लेखक के स्वभाव का कुछ पता न था। वे एक दिन साक्षात् मेरे घर आ पहुँचे, और उन्होंने मुझसे उन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए अनेक चापलूसी भरी बातें कीं। उन्होंने मुझसे कहा, "मैं 'सुख का रहस्य' नामक पुस्तक लिखना चाहता हूँ, और मैं आपसे इन प्रश्नों के उत्तर चाहता हूँ—वे आपके नाम के साथ अथवा उसके बिना ही छापे जा सकते हैं।" वे एक ऐसे सज्जन थे जिनसे किसी प्रकार की हानि का भय न हो सकता था, और मैंने उनकी बातचीत से यह अनुमान लगाया कि उनकी पुस्तक के प्रकाशित होने की कोई सम्भावना नहीं, अतः मैंने अपने उत्तर लिखकर एक कागज का टुकड़ा उन्हें दे दिया। मुझे उस समय यह सूझा कि लोगों को पहले खूब सताकर उनसे उनकी सुख-शान्ति का रहस्य जानने का यह ढंग भी निराला ही है।

अब मैंने समाचारपत्रों में पढ़ा है कि इसी विभाग के एक और व्यक्ति

ने 'अनुभवों' की एक छोटी-सी पुस्तक तैयार करने का विचार किया है, जो कि 'नौजवान लड़कों व लड़कियों में इस लिए बाँटी जाएगी कि उनके लिए पथप्रदर्शक का काम दे। लेखक का उद्देश्य यह है कि 'नौजवान लड़के व लड़कियाँ जीवन-क्षेत्र में उचित दृष्टिकोण लेकर प्रवेश करें और अच्छे नागरिक बनें।' जिन विषयों में यह सज्जन चाहते हैं कि हम, अपने दृष्टिकोण से ही, कुछ प्रयोग करें उनकी सूची इस प्रकार है: 'अच्छी सन्तान उत्पन्न करने के लिए उचित वातावरण, आरोग्यता, शिक्षा, विवाह, शिशुपालन, गृह-निर्माण, मुकद्दमे बाजी, बीमा व धन से लाभ उठाने के अन्य साधन, वृद्धावस्था के लिए आजीविका का प्रबन्ध, मनोरञ्जन के साधन, धन सम्बन्धी लेन-देन, कर्त्तव्यपालन, ईश्वरीय सहायता के लिए प्रार्थना, सत्य के प्रयोग, वेश-भूषा, आय-व्यय, मितव्ययिता, सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए संघ स्थापित करना, अनाथालय बनवाना दान की श्रेष्ठ विधि'—इत्यादि। इन निबन्धों में वह केवल पुस्तकीय ज्ञान के स्थान में उपर्युक्त विषयों पर हमारे अपने विचारों का संग्रह करना चाहते हैं।

धन्य हो, लेखक महोदय, धन्य! आप यह 'छोटी-सी पुस्तक' लिखने चले हैं या विश्वकोष तैयार करने? भला, आप सौ पृष्ठों की छोटी-सी पुस्तक में सारी बुद्धिमत्ता को कैसे भर सकते हैं? एच० जी० वेल्स[1] ने, (जिनके साथ आपकी तुलना आपके कार्य के महत्त्वाकांक्षापूर्ण विस्तार के कारण की जा सकती है) जीवन की आर्थिक व प्राणी शास्त्र सम्बन्धी दशाओं के विषय में ही सैंकड़ों पृष्ठ लिख डाले थे, परन्तु आप तो इस संसार के प्रायः सभी पदार्थों के सम्बन्ध में कुछ न कुछ कहना चाहते हैं। आपकी पुस्तिका तो अवश्य ही एक विलक्षण वस्तु होगी! ऐसा होने पर कोई कैसे कह सकता है कि चमत्कारों का युग अब नहीं रहा? इस प्रकार के बुद्धिमत्तापूर्ण संग्रह की हमें अतीव आवश्यकता है। हमारे पास पारिवारिक औषधि-मंजूषा है, और छोटा पीविङ्ग सेट भी, सो क्रियात्मक बुद्धिमत्ता की उपेक्षा क्यों की जाए?

आपका उद्देश्य भी सराहनीय है। आप चाहते हैं कि नौजवान लड़के व

1. एच० जी० वेल्स (१८६६—१९३९ ई०): प्रसिद्ध अंग्रेज उपन्यासकार, उन्होंने वैज्ञानिक रोमाञ्च कथा की शैली को जन्म दिया।

लड़कियाँ जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण ठीक रखें। यह सच है कि आप ऐसा करने वाले पहले व्यक्ति नहीं हैं। आपसे पहले कई और व्यक्ति इस उत्तम कार्य को कर चुके हैं। मैं आपके साहस की प्रशंसा करता हूं, क्योंकि आप उनकी असफलताओं से निराश नहीं हुए। यदि आप उनकी प्रेतात्माओं से सम्बन्ध स्थापित कर सकें, तो वे सभी आपको यह बताएँगी कि दूसरों को उपदेश देना, और जहाँ तक नौजवान लड़कों व लड़कियों की बात है, सरासर निकम्मा काम है। वे किसी से भी खासकर एक अपरिचित व्यक्ति से उपदेश लेने को तैयार नहीं होते। वे अपने माता-पिता की बात को दबी हँसी के साथ सुन लेते हैं, परन्तु अजनबी लोगों के प्रति तो उनके हृदय में तिरस्कार का भाव ही होता है।

और जो भी उपदेश आप उन्हें दे सकते हैं, वे तो उन्हें पहले से ही मिले होते हैं। जिन विषयों को आपने अपनी सूची में रखा है, उनके सम्बन्ध में मुझे जो कुछ बुद्धिमत्तापूर्ण वाक्य याद हैं उन्हें मैं यहाँ देना चाहता हूँ। मैं आपको यह नहीं बता सकता कि स्वस्थ बच्चों के लिए कैसी परिस्थिति की आवश्यकता है, क्योंकि वैज्ञानिकों का इस विषय में एक मत नहीं है कि वंशपरम्परा व परिस्थिति का अपेक्षाकृत क्या प्रभाव होता है। परन्तु मैं आपको स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दे सकता हूँ। बहुत देर हुई मैंने कहीं पढ़ा था कि स्वस्थ अथवा निरोग व्यक्ति वह है, जिसे अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं। शिक्षा के सम्बन्ध में मुझे थोरो का वचन याद आता है, "हमारे नौजवान कालेजों में अर्थशास्त्र पढ़ते हैं, और उनके माता-पिता उनके निर्वाह का प्रबन्ध करने के लिए कर्ज की दल-दल में धँसते हैं।" विवाह के सम्बन्ध में बर्नार्ड शा[1] ने कहा है, कोई भी व्यक्ति, अपनी पत्नी के जीवन-काल में, विवाह के सम्बन्ध में खरी बात नहीं कह सकता। मैं इसके साथ यह बात जोड़ना चाहता हूँ कि पत्नी की मृत्यु के बाद तो इस सचाई को प्रकट करने का कोई लाभ ही नहीं। बच्चों

---

१. बर्नार्ड शा (१८५६—१९५२ ई०) : प्रसिद्ध आयरिश नाटककार। १९२६ में इन्हें विश्वविख्यात नोबेल पुरस्कार मिला। यह समाजवादी विचारों के सुधारक थे।

के पालन-पोषण के सम्बन्ध में जितने भी मत हैं उन्हें स्टालिन[1] व डिकन्स[2] जैसे व्यक्तियों ने असत्य सिद्ध कर दिया है।

गृह-निर्माण के सम्बन्ध में केवल मात्र उपयोगी सुझाव मुझे अपने एक मित्र से मिला था, "एक जमीन का टुकड़ा खरीदो, और उसका मूल्य चुकाने के लिए, उसे किसी बैंक के पास गिरवी रख दो। फिर अपना मकान बनाने के लिए अपने मित्रों से रुपया उधार लो, परन्तु सारा घर अपने लिए ही न रखो, क्योंकि तुम्हारा तो उसके एक चौथाई भाग से ही काम चल सकता है। शेष $\frac{3}{4}$ भाग को किराये पर चढ़ा दो, और कुछ काल के बाद किराये-दार मिलकर तुम्हें घर से निकालने का यत्न करेंगे।" मुकद्दमेबाजी के सम्बन्ध में खरी-खरी बात मेरे एक वकील मित्र ने कही थी, एक मुकद्दमे का फैसला करवाने में ही उन्हें पूरे १९ वर्ष और ६ महीने का समय लग गया था। बीमे के सम्बन्ध में मैं केवल यह कहना चाहता हूँ, "इसका अर्थ तो केवल यह है कि किसी संभावित भावी लाभ के लिए तुम अपने वर्तमान लाभ का बलिदान कर दो।" वृद्धावस्था के लिए प्रबन्ध के सम्बन्ध में सबसे महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि मनुष्य बुढ़ापे में पालन-पोषण के योग्य बड़ा परिवार न रखे। परन्तु इस शिक्षा को गम्भीरतापूर्वक कौन सुनता है? मनोरञ्जन के साधनों के चुनाव की बात और है—क्या तुम चर्चिल[3] के समान चित्रकारी से अपना मन बहलाना चाहते हो या बिस्मार्क[4] के समान वृक्षों को काट-

---

१. स्टालिन (१८७९—१९५३ ई०) : रूस का 'लौह पुरुष'। यह रूस के तानाशाह माने जाते हैं।

२. डिकन्स (१८१२—१८७० ई०) : विक्टोरियन युग का प्रसिद्ध अंग्रेज उपन्यासकार।

३. चर्चिल (जन्म १८७४ ई०) : इंगलैंड के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री, अनुदार दल के नेता।

४. बिस्मार्क (१८१५—१८९८) : जर्मन राष्ट्रीयता का जन्मदाता। इन्होंने अपनी कूटनीति से फ्रांस के सम्राट् नैपोलियन तृतीय को १८७२ में परास्त किया और जर्मनी को यूरोप की उन्नतिशील शक्तियों की श्रेणी में स्थान दिया। इनकी नीति को 'खून और तलवार की नीति' कहते हैं।

काटकर ? इन दोनों सीमाओं के बीच में चुनाव की बहुत गुंजायश है, और यह कहना सुगम नहीं कि किसी व्यक्ति की रुचि का झुकाव किस ओर है ? परन्तु जैसे मेरा एक अंगरेज मित्र सदैव कहता है, "भारतीय लोगों को तो किसी मनोरञ्जन के साधन की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अपने अवकाश के समय में, वे अपने मित्रों और कभी-कभी अपने शत्रुओं की निंदा करने में अतीव आनन्द अनुभव करते हैं।"

धन सम्बन्धी लेन-देन के विषय में सबसे उत्तम सुझाव मुझे अपने एक मित्र से मिला था, जिसने मुझे यह कहानी सुनाई थी, "एक दिन एक मनुष्य मेरे पास आकर बोला, 'मुझ पर कई लाख रुपये का ऋण हो गया है और मुझे यह नहीं सूझता कि मैं इससे कैसे छुटकारा पाऊँ।' मैंने कहा, 'तुम बड़े मूर्ख हो, जो ऋण उतारने की सोच रहे हो। तुम्हें तो चाहिए कि लोगों को ऋण लेने का पाठ पढ़ाओ, क्योंकि एक व्यक्ति की साख उतनी ही बड़ी होती है, जितना कि उसका ऋण अधिक होता है।"

कर्त्तव्यपालन के सम्बन्ध में लार्ड बर्किनहेड[1] ने कहा है, "मैं सदैव काम की अपेक्षा आराम को अच्छा समझता हूँ।" हम सब जानते हैं कि वे अपने जीवन में कितने सफल रहे।

ईश्वरीय सहायता सम्बन्धी प्रार्थना के विषय में हमें सबसे उत्तम शिक्षा रहस्यवादी सन्तों से मिलती है, परन्तु उनके विषय में एक कठिनाई है—वह यह कि वे लोग एक ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं, जिसे समझना सुगम नहीं है। परन्तु प्रार्थना के प्रभाव को जतानेवाली टैनीसन की पंक्तियों से तो सभी पढ़े-लिखे लोग परिचित हैं। सत्य सम्बन्धी परीक्षणों के विषय में महात्मा गांधी जैसे किसी महापुरुष से ही शिक्षा ली जा सकती है, और उन्हें जो कुछ कहना था वह अपनी आत्मकथा में लिख दिया है। परन्तु

---

१. लार्ड बर्किनहेड : एक अंग्रेज राजनीतिज्ञ, वक्ता व लेखक। ये कुछ समय के लिए भारत के सेक्रेटरी आफ स्टेट रहे थे (१८७२–१९३० ई०)।

इतना होने पर भी, सत्य के विषय में हम अधिकांश में पाईलेट[1] के समान अविश्वासी हैं। जो मनुष्य सामाजिक कुरीतियों को सुधारना चाहता है और परोपकार के कामों का प्रबन्ध करने का अभिलाषी है, उसे रोटरी क्लब[2] के किसी मेम्बर से सलाह लेनी चाहिए, क्योंकि वह कुछ करने-कराने की इच्छा न रहते हुए भी, इस विषय पर एक लम्बा-चौड़ा लेक्चर झाड़ सकता है।

कोई व्यक्ति शायद यह कहे कि मैंने प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में कुछ न कुछ कहा है, परन्तु अपने विचार नहीं प्रकट किए—यह आक्षेप उचित नहीं है। इन विषयों के सम्बन्ध में जो भी स्मरणीय बातें मैं जानता था, उन्हें मैंने यहाँ लिख दिया है; परन्तु इस बारे में उपयुक्त प्रश्न यह है, "मैंने इनसे कुछ लाभ भी उठाया है क्या?" मेरा मित्र, जो संसार को सुधारने का दम भरता है, मानव-स्वभाव के सम्बन्ध में एक भी आवश्यक बात को नहीं जानता। ऐसा बहुत कम देखने में आता है कि कोई भी व्यक्ति दूसरे के अनुभव से लाभ उठाता हो। ऐसा होता तो यह संसार अपेक्षाकृत अधिक सुखमय होता। क्या हिटलर[2] ने नेपोलियन अथवा सीजर के अनुभव से कुछ लाभ उठाया है? कदापि नहीं। अपने-अपने ठिकाने पर हम सभी इसी दयनीय दशा में हैं। दूसरों के अनुभव से हम कोई शिक्षा नहीं लेते, इसलिए हम जीवन भर असाध्य मूर्ख अथवा मूर्खतापूर्ण भावुकता के शिकार बने रहते हैं। तभी तो बर्नार्ड शा जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति ने कहा है, "प्रत्येक बात की स्वयं परीक्षा करो, और जो अच्छी बात है उस पर डट जाओ।" मानव स्वभाव की प्रतिकूलता यह है कि हम कभी भी

---

१. पाईलेट: पैलेस्टाइन का रोमन गवर्नर, जिसके आगे यहूदियों ने ईसामसीह पर राजद्रोह का अभियोग लगाया और उनको वध-दण्ड दिलवाया।

२. रोटरी क्लब: १६०५ में शिकागो में कुछ व्यापारियों ने इसे परस्पर व्यक्तिगत, सामाजिक व व्यावहारिक सहायता के लिए स्थापित किया। १६१२ में यह अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बन गई। अब इसकी शाखाएँ प्रायः सभी देशों में पाई जाती हैं।

किसी वस्तु की परीक्षा स्वयं नहीं करते, क्योंकि दूसरे मनुष्यों की सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करना सुगम प्रतीत होता है। यदि हम अच्छी बात पर डटना जानते, तो यह भी कोई बड़ी भूल न होती; परन्तु बात कुछ ऐसी है कि, अच्छी बात को समझते हुए भी हम उस पर दृढ़ नहीं रह सकते। यही कारण है कि आज का संसार ऐसी बुरी दशा में है, और मनुष्य इतना दुखी है।

चुप रहो ! | २

आजकल, जब कि 'आवश्यकता के बिना यात्रा मत करो' के नारे की गूँज हमारे कानों में सभी प्रकार के साधनों से पहुँचाई जा रही है, यात्रा करना सचमुच बड़े साहस का काम है। यात्रा के विचार से ही—चाहे वह कितनी छोटी ही क्यों न हो —मनुष्य के हृदय में घबराहट उत्पन्न हो जाती है। परन्तु कभी-कभी यात्रा के बिना और कोई चारा ही नहीं होता, उससे छुटकारा पाने की कोई सूरत ही नहीं होती।

पिछले कुछ वर्षों में इस विषय में मैंने जो आत्मत्याग के काम किए हैं उनकी गिनती की जाए, तो मैं अवश्य ही महात्मा कहलाने का अधिकारी हो जाऊँ। मेरे कुछ मित्र शायद महात्मा शब्द को मेरे नाम के साथ जोड़ दें, और मुझे 'अमुक महात्मा' कहकर पुकारें, जैसे कि चार्ल्स लैम्ब[1] को उसके मित्र महात्मा चार्ल्स कहते थे। परन्तु वह अपने सौजन्य के लिए प्रसिद्ध था। मैं तो यह नहीं जानता कि मुझमें कौन-सा ऐसा गुण है, जिससे कि मैं इस पदवी को पा सकूँ। एक बार जब मैंने अपने एक घनिष्ठ मित्र से इस बात की चर्चा की, तो उसने उपहास के स्वर में कहा, "तुम महात्मा कहलाने योग्य हो, क्योंकि तुम भीरु स्वभाव के हो।" इससे मेरे हृदय को एक भारी चोट लगी, क्योंकि यदि एक भीरु हृदय कुलीन रमणी को नहीं पा सकता, तो वह किसी मनुष्य को महात्मा पद के गौरवशाली शिखर पर भी नहीं चढ़ा सकता।

मेरे मित्र चाहे कुछ भी क्यों न कहें, मैं जानता हूँ कि यात्राओं का त्याग करके, और अपने काम से आराम पाने के छोटे-छोटे अवकाशों की ओर से मुँह मोड़कर, मैंने एक प्रकार से अपने आप पर प्रभुत्व पा लिया है। उदा-

१. चार्ल्स लैम्ब (१७७५–१८३४) : प्रसिद्ध अंगरेज निबंध-लेखक।

हरण के लिए, मैं अपनी धर्म पत्नी के एक प्राचीनतम सम्बन्धी की मृत्यु पर भी बलरामपुर नाम के गाँव में नहीं पहुँचा था। उसने बड़े मर्मभेदी स्वर में कहा था, "आप तो हृदयहीन हैं। आपमें भावुकता का लेश भी नहीं—आप नितान्त स्वार्थी और भावनाहीन व्यक्ति हैं।" मैंने चुपचाप यह सब कुछ सुन लिया। मैंने अपने आपको इस प्रकार समझाया, 'एक अच्छा पति होने की अपेक्षा एक अच्छा देशभक्त होना अधिक श्रेष्ठ है।' परन्तु उसके मर्माहत स्वाभिमान को शान्ति देने के लिए मैंने कहा, "अच्छा, फिर कभी ऐसी दुर्घटना होने पर मैं अवश्य तुम्हारा साथ दूँगा।" परन्तु इससे तो मामला और भी बिगड़ गया। मेरी शान्ति की चेष्टा उसके लिए अधिक क्षोभ का कारण हुई। उसके विचार में मैं हठी तथा हृदयहीन था, और उसके सब सम्बन्धियों से द्वेष रखता था और गुप्त रूप में उनकी मृत्यु की कामना करता था।

एक और अवसर पर मैंने दिल्ली की गाड़ी में सवार होने से इनकार कर दिया था, यद्यपि मेरे एक मित्र ने अतीव कातर भाव से मुझसे यह प्रार्थना की थी कि मैं उसकी सहायता के लिए वहाँ पहुँचूं। कचहरी में उसका मुकद्दमा विचाराधीन था, और वह चाहता था कि मैं उसके पक्ष में गवाही दूं। मैंने दिल्ली जाने में अपनी असमर्थता प्रकट की, और इसके लिए अनेक युक्तियाँ इकट्ठी कर दीं। मैंने कहा, "तुमने मुझे बहुत थोड़ा समय दिया है, मैं गाड़ी में अपनी सीट रिजर्व न करा सकूँगा, और मुझे तो मुकद्दमे के गुण-दोष का भी कुछ पता नहीं। मेरी गवाही का तो कोई विशेष महत्त्व भी नहीं है, तुम्हें तो और बहुत-से प्रभावशाली गवाह मिल सकते हैं। मुझे फिर कभी साक्षी देने के लिए बुला लेना।" परन्तु इन सब युक्तियों का मेरे मित्र पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उसने समझा कि मैंने उसका आड़े वक्त में साथ नहीं दिया; उसे एक प्रकार से धोखा दिया है। इससे हमारी मित्रता का अन्त हो गया। परन्तु मैंने यह आत्मत्याग राष्ट्रीय बचत के विचार से किया था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे मैंने कोई बड़ा शूरवीरता का काम किया हो। मेरे मित्र ने, जोकि अब मेरा मित्र न रहा था—मुझे बहुत कुछ बुरा-भला कहा, परन्तु मैंने इसकी कुछ परवाह न की। सच पूछो तो, उच्चतम सिद्धान्तों पर आचरण करने वाले व्यक्ति के विषय

में भी भ्रम हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है।

सो, अब आपको यह पता चल गया होगा कि पिछले कुछ वर्षों में मैंने केवल मात्र अपनी देशभक्ति की भावना के अधीन होकर कितनी वस्तुओं से अपने आपको वञ्चित रखा है। जब कभी इस काम के लिए यात्रा पर जाना आवश्यक होता तो मै विवाह आदि में सम्मिलित होने से इनकार कर देता। मैं अपने स्वास्थ्य को सुधारने और अपने बैंक-कोश को कम करने के लिए किसी स्वास्थ्यवर्धक स्थान पर जाने को सहमत न होता। मैंने कई ऐसे महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक सम्मेलनों से किनारा किया, जहाँ कि लोग घण्टों बहस करने पर भी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाते। मैं तो मानो एक प्रकार से वैरागी बन गया हूँ—घर से निकलना मुझे पसन्द ही नहीं है। सच पूछो तो, छोटी-छोटी बातों में आत्मत्याग का अभ्यास करने से ही मनुष्य बड़ी-बड़ी बातों में आत्मत्याग करने का अधिकारी हो जाता है। मेरे कई मित्र, जो मनोविज्ञान की पुस्तकें पढ़ते हैं, मुझे यह कहते हैं कि मैं साहस के मार्ग को छोड़कर और आलस्यपूर्ण सुरक्षा के पथ को अपना कर अपने आपको हानि पहुँचा रहा हूं। परन्तु मैं उनकी चेतावनियों पर कान नहीं धरता। मुझे तो ऐसा सोचने का स्वभाव-सा ही हो गया है कि आत्म-त्याग मनुष्य-जीवन का उच्चतम भाव है।

परन्तु, हमारा जीवन एक ऐसे ढांचे में ढला है, कि प्रत्येक नियम के साथ कुछ न कुछ अपवाद जुड़े होते हैं। अभी कुछ समय हुआ कि मेरे विषय में ही एक अपवाद रूप घटना घटी। मेरा एक मित्र, जिसे मनुष्य के रूप में बिजली का यन्त्र समझना चाहिए, कुछ दिन हुए मुझे मिलने के लिए आया। वह बहुत दूर से आया था। भौगोलिक दृष्टि से वह मुझसे केवल एक हजार मील की दूरी पर रहता है, परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह किसी और लोक का वासी है। उसने अपने नूतन सौभाग्य व अपनी सुख-समृद्धि की, प्रशंसा के पुल बाँध दिए। फिर उसने मुझसे नम्र निवेदन किया, "आप मेरे साथ चलकर—कुछ दिन के लिए ही सही मेरे सुख-सौभाग्य का आनन्द लें।" मैं उसके पास उन दिनों रह चुका था, जब कि भाग्य का देवता उस पर कुपित था, अतः अब कोई ऐसा कारण न था कि मैं उसकी सुख-सम्पत्ति में भाग न लूं। उसने मुझे कहा, "जीवन मेरे लिए अलौकिक सुख देने वाला

है। मेरे मार्ग में तो मानो फूल ही फूल बिछे हुए हैं। मैं एक शानदार बँगले में रहता हूँ; मोटरकार में घूमता-फिरता हूँ; मेरे बीसियों नौकर-चाकर हैं, और मेरे यहाँ किसी प्रकार की सुख-सामग्री की कमी नहीं है। परन्तु मेरे कहने मात्र से आपको मेरे रहन-सहन के ढंग का कुछ पता नहीं चल सकता—उसे तो अपनी आँखों से देखकर ही विश्वास आएगा।" परन्तु मैंने अपने इस नूतन भाग्यशाली मित्र को स्पष्ट कह दिया, "मैं इतनी दूर जाने के लिए यात्रा करने को कदापि उद्यत न हूँगा। यह बात नहीं कि मैं इससे घबराता या भय खाता हूँ। मैंने तो आवश्यकता के बिना यात्रा न करने का नियम ही बना लिया है।" परन्तु उसने मेरी एक न सुनी। एक बार तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो स्वयं शैतान ही मुझे प्रलोभन में डालने के लिए आ पहुँचा हो, परन्तु उसकी इच्छा के विरुद्ध चलना सम्भव न था। निदान, मैंने हार मान ली। मेरे मित्र ने मेरी सुविधा के लिए सभी सामान जुटाने में कोई कसर न छोड़ी। उसने सीटें रिज़र्व करवा लीं, और मुझे आराम पहुँचाने का पूरा प्रबन्ध कर लिया।

अब, मैं उसके साथ गाड़ी में जा बैठा। जब गाड़ी चली तो मैंने देखा कि यद्यपि उस डिब्बे में पाँच व्यक्तियों के लिए ही स्थान था, वहाँ सात आदमी बैठे हुए थे। परन्तु वे दो फ़ालतू आदमी ऐसे चुपचाप और भले-मानस थे कि कोई भी व्यक्ति इतना कठोर हृदय न हो सकता था कि उन्हें बाहर निकल जाने को कहे। वे ऐसे विनीत स्वभाव के थे कि उन्होंने यह वचन दिया कि वे फ़र्श पर ही लेट जाएँगे, और किसी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाएँगे। हमने उनकी बात मान ली, और उन्हें वहीं आराम करने दिया। परन्तु अभी हमारे कष्टों की इतिश्री न हुई थी। अगले स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो दो और आदमी अन्दर चले आए। सच पूछो तो, उन्होंने डिब्बे में प्रवेश ही नहीं किया वरन् हम सबके विरोध की परवाह न करते हुए अन्दर घुस आए। उनमें से एक, जो कि शायद कभी ब्वाय स्काउट रह चुका था, तुरन्त सब वस्तुओं को ठीक-ठाक करके रखने लगा। उसने हमारे सामान को नए ढंग से जोड़कर रख दिया, और फिर हमें कवायद कराने लगा। हमने उसकी सब चेष्टाओं को प्रसन्न वदन से स्वीकार किया और अपने चेहरे पर मुस्कराहट बनाए रखने का

पूरा प्रयत्न किया। मैं तो अपने आपमें इस बात से फूला न समाता था कि वह भद्र पुरुष नेतृत्व के गुण का प्रमाण दे रहा था। मुझे तो अपनी कल्पना की उड़ान में ऐसा प्रतीत हुआ कि एक दिन वह हमारे देश की बागडोर को सम्भालेगा और इसकी वर्तमान गड़बड़ को दूर करेगा। परन्तु हमें कवायद कराने से ही उसे सन्तोष न हुआ, उसने हम पर लेक्चर झाड़ना शुरू किया। उसने इतने जोर-शोर से व्याख्यान दिया कि मैं अब भी उसकी वक्तृत्व-शक्ति के प्रभाव को अनुभव कर रहा हूँ। परन्तु मैं इस बात का निश्चय न कर सका कि वह एक समाजवादी था अथवा धर्मोपदेशक। एक बार उसने हमें बताया कि हमें अपनी सभी अच्छी वस्तुओं का दूसरों के साथ मिलकर उपभोग करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यह एक भयंकर सिद्धान्त है, परन्तु उसकी भावना कोई बुरी न थी। वह तो केवल इतना ही चाहता था कि हम उसे व उसके साथी को अपनी सीटों का कुछ भाग दे देवें। परन्तु फिर उसने हमें मानव मात्र के प्रति भ्रातृ भाव का उपदेश देना आरम्भ किया, जिसके अर्थ को मैं भली प्रकार न समझ सका। फिर मुझे इस बात की प्रसन्नता थी कि हमें एक ऐसा नेता, पथप्रदर्शक व प्रबन्धक मिल गया था, जो कि भविष्य में हमारे लिए सब प्रकार का उचित प्रबन्ध करेगा।

परन्तु मैं इस बात का अनुमान न लगा सका था कि अगले स्टेशन पर क्या होने वाला है। वहाँ मेरा मित्र कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध करने के लिए बाहर चला गया, और मैं उस भद्र पुरुष के नेतृत्व में पूरा भरोसा करके वहीं डिब्बे में आराम से बैठा रहा। उसने तो मानों सब बातों का ठेका ही ले लिया हो। वह खिड़की से सिर निकालकर बैठ गया, और जो भी कोई व्यक्ति डिब्बे में घुसने का प्रयत्न करता, उसे ही वह वहाँ से भगा देता। कुछ समय तक तो उसे आशा से बढ़कर सफलता मिली, परन्तु क्षण भर में छः वर्दी वाले सिपाही डिब्बे के सामने आ खड़े हुए। वे अन्दर आना चाहते थे, परन्तु हमारा सन्तरी वहाँ डटा हुआ था। पहले तो उन्होंने उससे नम्र निवेदन किया, परन्तु उसका कुछ फल न निकला। फिर उन्होंने उसे समझाना आरम्भ किया, परन्तु इस पर भी उसका हृदय न पसीजा। कुछ समय के बाद क्रोध में आकर उन्होंने उसे बुरा-भला कहना शुरू किया। तब

वह अपने आपे से बाहर होकर गरज उठा, "चुप रहो !" ये दो शब्द एक प्रकार से भर्त्सनापूर्ण चैलेन्ज के सूचक थे——इनको सुनकर उनके तन-बदन में आग लग गई। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका अपमान किया गया है और उसका प्रतिशोध करना उनका कर्त्तव्य है। अब उन्होंने वाग्युद्ध को छोड़कर प्रहार-युद्ध आरम्भ किया। हमारे नेता की अच्छी गत बनी, परन्तु इससे भी बुरी बात यह हुई कि उसने दिल छोड़ दिया। अब तो वह एक असहाय शिशु के समान था, जो कि किसी प्रकार का भी विरोध नहीं कर सकता। उसकी इस अवस्था से लाभ उठाकर, वे लोग दौड़कर डिब्बे में आ घुसे। अब हमारी संख्या उससे तिगुनी हो गई थी, जिसके लिए कि उस डिब्बे में प्रबन्ध किया गया था। हम सभी पर इस घटना का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा, परन्तु मेरी दशा सबसे अधिक शोचनीय थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझसे धोखा हुआ है, और मैं एक मिट्टी के माधो का पुजारी बना रहा हूँ। मुझे इस बात का ज्ञान हो गया कि मैं अन्धी श्रद्धा का शिकार हो गया था, और मैंने उस व्यक्ति पर भरोसा कर लिया था, जो कि शत्रु के साथ पहली मुठभेड़ में ही हथियार डाल बैठा था। एक प्रकार से, मेरे भाव उसके प्रति वैसे ही थे, जैसे कि १९४४ के दिसम्बर में जर्मन लोगों के हिटलर के प्रति रहे होंगे। परन्तु परिस्थिति को पहचानने में मुझे कुछ समय लग गया। सबसे अधिक चिन्ता का विषय यह था कि मेरे मित्र का कहीं नाम-निशान भी न था। मैं केवल इस आशा का सहारा ले सकता था कि वह किसी और डिब्बे में चला गया होगा। यह केवल मात्र मेरी अपनी इच्छा का मूर्त रूप था, परन्तु यह स्थिति तिरस्कार के योग्य नहीं है, क्योंकि इससे कठिनाई के समय हमारा साहस बना रहता है।

गाड़ी फिर दौड़ने लगी, और लगभग डेढ़ घण्टे बाद हम अगले पड़ाव पर पहुँचे। मैंने अपने मित्र की इधर-उधर सभी ओर खोज की, परन्तु वह लौटकर न आया। जब मैं अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँच गया, तो मैं अपनी सब वस्तुओं को समेटकर गाड़ी से बाहर निकल गया।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह सब दुर्घटना उन्हीं दो शब्दों 'चुप रहो!' के कारण हुई। कई शब्द मनुष्यों में क्रिया-शक्ति को उत्पन्न कर देते हैं——

इन दो शब्दों का यही प्रभाव हुआ था। मेरे मित्र को और मुझे इसकी सजा भुगतनी पड़ी पड़ी थी। 'करे कोई और भरे कोई' वाली कहावत यहाँ चरितार्थ हो रही थी। यह कितने दुःख की बात है कि कर्म का सिद्धान्त ऐसा बेढंगा है !

पालतू प्राणी | ३

एक रात स•••से ल•••तक यात्रा करते हुए मैंने अपने आपको अपरिचित लोगों के बीच में पाया। परन्तु उनका साथ मेरे लिए सर्वथा अरुचिकर न था। वह रेल का डिब्बा, सदा की भाँति, मुसाफिरों से भरा हुआ था। शायद दिन के समय मुझे वहाँ कोई विशेष कष्ट न होता, परन्तु रात के समय सभी भले लोग सोना पसन्द करते हैं, और वहाँ मेरे लिए तो कम से कम मानव-जीवन की इस दैनिक आवश्यकता की पूर्ति का कोई अवसर न था। मैंने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो देखा कि उस डिब्बे में पाँच और व्यक्ति थे। मैंने देखा कि एक भारी तोंद वाला लाला बड़े जोर-शोर से लगातार खुर्राटे भर रहा है, और एक अधेड़ आयु का व्यक्ति ऊपर की सीट पर लेटा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता था कि उसे गहरी नींद नहीं आती, क्योंकि वह आध घण्टे के बाद, आँखें खोलकर डिब्बे के चारों ओर बड़ी पैनी नजर डालता और उसमें बैठे हुए प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान-पूर्वक देखता था। वहाँ—परमात्मा उसका भला करे—एक बूढ़ा आदमी भी था, जिसकी मुखमुद्रा शान्त और नेत्र करुणापूर्ण थे। उसकी सीट उसकी आवश्यकता से कुछ बड़ी थी, उसने बड़ी उदारता से मुझे बैठने को स्थान दे दिया। वहाँ एक नवविवाहित जोड़ा भी था—वे पति-पत्नी शायद आनन्द-मास मनाने जा रहे थे—उनके आसपास शृङ्गार रस का प्रवाह चल रहा था। उनकी प्रेमभरी चितवन, मधुर मुस्कान, मीठी-मीठी बातें और आदरसूचक चेष्टाएँ उस डिब्बे को प्रकाशमान कर रही थीं—मानो वे रात को दिन बना रही हों, और संसार की शोभा को बढ़ा रही हों। ऐसा प्रतीत होता था कि यह डिब्बा एक उद्यान है, जिसमें ये दैवी जीव विहार करने के लिए आ निकले हैं। उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी वस्तु का ध्यान ही न था। प्रेम एक अलौकिक वस्तु है, जोकि देश-काल की सीमा से बाहर है—

उसे तो केवल अपने प्रेम-पात्र का ही ज्ञान होता है।

परन्तु इस उद्यान में भी बन्दर के रूप में एक साँप[1] (हानिकारक व दुःखप्रद जीव) था, जिसने मेरी सारी प्रसन्नता को नष्ट कर दिया, और मेरे मन की उस शान्ति को भी भङ्ग कर दिया जो कि रात अपने साथ लाती है। इसके साथ ही वह विश्राम की भावना भी जाती रही, जो कि एक व्यक्ति गाड़ी में बैठने भर का स्थान मिल जाने पर अनुभव करता है, चाहे वह सोने का समय ही क्यों न हो। वह छोटा-सा बन्दर बहुत शोर मचाने वाला व दुःख देने वाला था। वह बहुत चञ्चल था—निचली सीट से छलांग लगाकर ऊपर चढ़ जाता, जैसे कि वे किसी वृक्ष की शाखाएँ हों, अथवा खिड़की में से अपने सिर को अन्दर-बाहर करता, या ऊपर की सीट के सिरे से लटककर कुछ ऐसे शब्द करता जो कि किसी प्रकार मनोहर न कहे जा सकते थे। उसके गले के कालर के साथ एक ढीली-सी सुन्दर रस्सी बंधी हुई थी, जो कि उसकी उछल-कूद को सीमा में रख रही थी। इससे उसकी चञ्चल चेष्टा उन्हीं दो सीटों तक सीमित थीं, जिन पर कि वह नवेली जोड़ी बैठी हुई थी; नहीं तो वह सारे डिब्बे को एक छोटा-सा जंगल समझकर खूब उछल-कूद मचाता। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि यदि मैं स्थान के अभाव से नहीं सो सकता, तो वे भी उस बन्दर की विचित्र चहल-पहल से क्षण भर के लिए भी न सो सकते होंगे। परन्तु उन्होंने बारी-बारी से बन्दर को सम्भालने का प्रबन्ध किया हुआ था। जब उनमें से एक उस-की उछल-कूद से उकता जाता तो वह उसे दूसरे को पकड़ा देता था; परन्तु यह काम प्रसन्नतापूर्वक किया जाता था। पत्नी पति को कहती "जरा मुनुआ का ध्यान रखना" और पति भी ऐसा ही करता। कुछ समय के बाद मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो 'मुनुआ' उनकी पहली सन्तान है, जिसका पति-पत्नी दोनों को स्वयं ध्यान रखना पड़ता है।

मैं इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि मुझे मुनुआ से डर लगता

---

१. उद्यान में साँप : बाईबल की उस घटना की ओर संकेत है—जब आदम व हव्वा बहिश्त के बाग में सुखपूर्वक रहते थे। और शैतान ने साँप का रूप धारण करके उन्हें प्रलोभन में डाला, जिससे उनका पतन हुआ।

था। मुझे लगातार ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह मेरी टोपी उड़ा लेगा और उसे खिड़की में से बाहर फेंक देगा, अथवा मेरी ऐनक को ले भागेगा या मेरे कंधे पर आ बैठेगा और मेरे कान खींचने लगेगा। मुझे भय था कि वह कहीं मुझसे वह पुस्तक, जिसे मैं पढ़ रहा था, छीनकर न ले जाए और उसे फाड़ न डाले। यह सच है कि ऐसी कोई घटना नहीं हुई, परन्तु मेरा हृदय मारे भय के सहमा ही रहा। मुनुआ के प्रति मेरी उत्सुकता दूर-दूर की व परिमित-सी थी। जैसे मेरी भय की भावना व्याकुलता की सीमा तक न पहुँची थी, वैसे ही मेरी उत्सुकता भी स्नेहभाव में परिणत न हुई थी। सच पूछो तो, मेरे हृदय में मुनुआ के प्रति दयालुता का भाव छिपा हुआ था। यह शायद संचारित करुणा का भाव था, परन्तु इसकी सत्ता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। उस नवेली जोड़ी को देखकर और मुनुआ की छोटी आयु का विचार करके शायद यह भाव उत्पन्न हुआ हो। उसने अभी-अभी बचपन की कौतूहलपूर्ण अवस्था में पग धरा था। यदि वह मनुष्य का बच्चा होता तो स्कूल जाने की आयु का होता। वह एक शैशव संगीत के समान था—जिसकी लय चाहे टूटी-फूटी व अनियमित ही हो, परन्तु आधारभूत संगीत आकर्षक ही होता है। वह उस जोड़ी को अच्छा-खासा कष्ट दे रहा था, परन्तु और किसी व्यक्ति को न सताता था। उसने मेरे पुस्तक के पढ़ने में कोई बाधा न डाली; उस भारी-भरकम शरीर वाले लाला को चादर से मुँह ढाँपे हुए आराम से सोने दिया; ऊपर की सीट पर सोए हुए व्यक्ति के अनुचित कौतूहल में कोई हस्तक्षेप न किया, और उस देवतास्वरूप वृद्ध को सुख-चैन से सोने दिया। फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह उस जोड़ी के लिए विशेष असुविधा का कारण हो रहा था, क्योंकि उसने उन्हें क्षण भर भी चैन न लेने दिया। परन्तु वे दोनों इस बात की कुछ परवाह न करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उनका उसके प्रति वैसा ही स्नेह था जैसा कि माता-पिता का अपनी पहली संतान के लिए होता है। वे उसके प्रति इतना वात्सल्य भाव प्रकट कर रहे थे कि मेरे जैसा पक्का दुनियादार भी उसको कुछ-कुछ स्नेह भाव से देखे बिना न रह सका।

कुछ घण्टों के बाद हम एक जंकशन पर पहुँचे, तो गार्ड ने आकर पूछा, "इस डिब्बे में कितने आदमी बैठे हैं" नवयुवती ने कहा, "केवल छः।" मैंने

धीमे स्वर में कहा, "नहीं, यहाँ सात व्यक्ति हैं—छ: मनुष्य और एक बन्दर।" यह सुनकर वह महिला हँस पड़ी और मेरे मुख पर भी एक प्रकार की मुस्कराहट-सी आ गई। मेरी यह बात उनके लिए बहुत दिलचस्पी का कारण हुई। सच बात तो यह थी कि वह बन्दर, किसी और व्यक्ति की अपेक्षा, उस डिब्बे को अधिक रूप में अपना घर समझता था—वह तो किसी अधिकृत प्रदेश के स्वामी के समान प्रतीत होता था। वह इतनी समझ रखता था कि उसके राज्य की सीमा जहाँ तक है—वह उससे आगे बढ़कर कभी भी विपक्षी के राज्य पर अनुचित अधिकार न जमाता था। वह जानता था कि वह किन पर शासन कर सकता है। वह किसी प्रकार की नई विजय अथवा शासन की अभिलाषा न करता था।

इन सब बातों से मुझे बहुत कौतूहल हुआ और कुछ-कुछ आश्चर्य भी। ये दोनों व्यक्ति इस बन्दर से क्यों इतना प्रेम करते हैं? क्या इनका परस्पर प्रेम अपने आपमें पूरा नहीं है? मुझे शीघ्र ही यह अनुभव हुआ कि वह बन्दर उनके परस्पर प्रेम को दृढ़ करने वाली एक जञ्जीर था। जैसे बच्चे पति-पत्नी के परस्पर प्रेम का प्रमाणपत्र होते हैं, वैसे ही वह बन्दर उनके परस्पर प्रेम को बढ़ाने का साधन था। वह एक प्रकार से संतान का स्थानापन्न था। फिर मैं उदासभाव से सोचने लगा कि उनके यहाँ सन्तान होने पर उस बन्दर की क्या दशा होगी। फिर तो उनके साथ इस प्रकार स्वतन्त्रतापूर्वक क्रीड़ा न कर सकेगा, जैसे कि वह इस समय कर रहा था। उसे फिर, असुविधाजनक ही नहीं, दु:खदायी समझा जाएगा। उसका पालन-पोषण तो होगा, परन्तु उसे लाड़-चाव से वंचित रहना पड़ेगा। वह उनका कृपापात्र न रहेगा—चाहे उसे उनकी क्रूरता न सहनी पड़े, तो भी वे उसकी ओर से लापरवाह हो जाएंगे।

हाँ तो मैं एक बात को न समझ सका। इस जोड़ी को यदि पालतू पशु रखने का शौक ही था, तो भी इन्होंने एक बन्दर को ही क्यों चुना? एक अच्छी नस्ल के कुत्ते का पालना इनके लिए अधिक फैशनेबल होता। बिल्ली का चुनाव भी ठीक रहता, क्योंकि वह चिरकाल से एक वांछनीय घरेलू पशु रही है। एक तोता भी उनके लिए एक अच्छा साथी होता। परन्तु उन्होंने एक बन्दर को ही चुना—क्या यह डार्विन साहब के

इस सिद्धान्त का समर्थन करने का प्रयत्न था कि, किसी भी अन्य प्राणी की अपेक्षा बन्दर मनुष्य से अधिक समता रखता है ? अथवा यह केवलमात्र प्रदर्शन-प्रेम था ? हम प्रायः कुत्तों को पालतू पशु के रूप में देखते आए हैं, इसलिए हम उन लोगों की ओर विशेष ध्यान नहीं देते, जो कि उनको पालते हैं। बिल्लियाँ तो पालतू पशु के रूप में एक साधारण जीव हैं, और तोतों में भी कोई विशेषता नहीं है—हाँ, बन्दरों का पालतू पशु होना कुछ असाधारण-सी बात है।

सारांश, पालतू पशु उदास मनुष्यों को प्रिय लगते हैं। मैं एक लड़के को जानता था, जिसे पालतू पशु रखने का बहुत शौक था। उसने अपने घर को एक चिड़ियाघर-सा बना रखा था, और उसका पिता सदा इस बात की शिकायत करता था। एक बार उसने एक कुत्ता पाला। उस दुष्ट ने उसके पिता को काट लिया। वह कुत्ता कुछ दिन के बाद मर गया, परन्तु डाक्टर यह न कह सके कि वह पागल था या नहीं। उसके पिता को देर तक पागल कुत्ते के काटे का इलाज करवाना पड़ा, इसलिए वह अपने बेटे पर बहुत बिगड़ा। परन्तु बेटा, उसके भावों का तिरस्कार करके, एक बड़े-से कुत्ते को घर में ले आया। वह कुत्ता बड़ा खूँखार निकला—उसने एक पड़ोसी की लड़की को काट लिया। लड़की के पिता ने क्रोध में आकर, मामले को कचहरी में ले जाने की धमकी दी। उसे बड़ी मुश्किल से ठंडा किया गया, और यह फैसला हुआ कि कुत्ते को छुट्टी दे दी जाए। परन्तु लड़के ने भूख-हड़ताल कर दी, और कहा, "जब तक कुत्ता फिर न आएगा, मैं अन्न-जल न छूऊँगा।" पिता को हार माननी पड़ी, परन्तु सौभाग्य से, कुछ समय बाद ही कुत्ते का 'स्वर्गवास' हो गया। पर कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। लड़के ने चिड़ियाँ पालना आरम्भ किया, और वह एक धार्मिक कर्त्तव्य समझकर उनको खिलाने-पिलाने लगा। जब कभी उनमें से कोई चिड़िया मर जाती, तो उसकी विधिपूर्वक अन्त्येष्टि क्रिया की जाती और परिवार भर में उसका शोक मनाया जाता। चिड़ियों के बाद मुर्गियों की बारी आई—उसने मानो अपने घर को एक मुर्गीखाना बना दिया। परन्तु बेचारी मुर्गियाँ किसी न किसी रोग का शिकार होकर मर जातीं। लड़का फिर भी न घबराया—वह कुछ मोर ले आया और बड़े प्रेम से उन्हें पालने लगा, परन्तु वे भी

अधिक काल तक न जिए। उसका पिता इन सब बातों पर बहुत खीझता था, परन्तु कोई रोक-टोक न करता था। मैं उस लड़के को भली प्रकार जानता था —वह बहुत उदास-सा रहता था। उसके भाई-बहिन थे, माता-पिता थे और अनेक चाचे-चाचियाँ थीं, परन्तु उसके लिए उनका कोई महत्त्व न था। वह एकान्तप्रिय, विचारशील बालक था, जो कि अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट नहीं करता था। वह, किन्हीं विशेष कारणों से, मनुष्यों के साथ को पसन्द नहीं करता था, इसलिए पशु-पक्षियों से उसकी मित्रता थी। शायद कोई व्यक्ति यह कहे कि उसमें मनुष्य मात्र के प्रति घृणा का भाव था और दूसरे ऐसा सोचें कि वह कुछ-कुछ रहस्यवादी सन्तों के-से स्वभाव का था। यह निर्णय करना कठिन है कि उसमें स्विफ्ट[1] का कुछ अंश था अथवा सेंटफ्रान्सिस[2] का, परन्तु इसमें सन्देह नहींकि वह अतीव उदास प्रकृति का था।

इससे मेरे मन में यह विचार उठा कि यह नवयुवक दम्पति भी कहीं, गुप्त रूप से, उदास स्वभाव के न हों। उनका विवाह हुए कुछ ही समय पूर्व हुआ था और, प्रत्यक्ष रूप में, उनमें परस्पर स्नेहभाव व प्रेम भी था, परन्तु सम्भव है कि उनके हृदयों में उदासी का भाव अज्ञात रूप में घर किए बैठा हो। उदासी एक प्रकार का आध्यात्मिक रोग है, जो किसी भी व्यक्ति के तन-मन को झुलसा देने की शक्ति रखता है। यह मनुष्यों को भिन्न-भिन्न वस्तुओं की ओर प्रेरित करता है। इसका भिन्न-भिन्न स्वभाव के मनुष्यों पर भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव होता है। दयालु स्वभाव के एकान्तप्रिय व्यक्ति को पशु-पक्षी पालने में सुख प्रतीत होता है, और वह इस प्रकार मानव-जगत् व पशु जगत् में एक सच्चा स्नेह बन्धन-स्थापित करता है। इसीलिए

---

१. स्विफ्ट (१६६७–१७४५ ई०): प्रसिद्ध अंगरेज साहित्यकार, गद्य-लेखक व व्यंग-विशारद।

२. सेंट फ्रांसिस (११८२–१२२६ ई०): एक इटैलियन सन्त, जिन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति को त्यागकर तपस्या व लोकसेवा का व्रत धारण किया था। उनकी सभी जीवों के प्रति सद्भावना थी।

कौपर[1] खरगोश पालते थे और तोरुदत्त[2] तोतों व घोड़ों से प्रेम करती थीं। परन्तु वे दोनों तो कवि थे; वे अपने हृदय के भावों को कविता के रूप में प्रकट करके उदासी से छुटकारा पा सकते थे। परन्तु सभी व्यक्तियों के पास तो यह गुण नहीं होता, इसलिए हममें से बहुत-से केवल साथ के विचार से ही पशु-पक्षियों को पालते हैं। पशु-पक्षी अच्छे मित्र सिद्ध होते हैं, क्योंकि वे प्रेम के बदले में प्रेम देते हैं। यही कारण है कि प्रेम के भूखे लोग उनके साथ को पसन्द करते हैं। परन्तु मुझे अब भी यह समझ नहीं पड़ता कि एक बन्दर को क्यों पाला जाए—वह तो एक ऐसा चंचल प्राणी है कि उसके संग में किसी को किसी प्रकार भी सुख-चैन नहीं मिल सकता। वह इतना उपद्रवी होता है कि मनुष्य को सदा सावधान रहना पड़ता है, और फिर वह कोई साफ-सुथरा जीव भी तो नहीं। हमारे विचार में तो उसका वृक्षों व वनों से ही सम्बन्ध होता है, और वह अपने ढंग का लुटेरा भी एक ही होता है। शायद कोई यह कहे कि उसे सिधाया जा सकता है, परन्तु तोतों को सिधाना उससे सुगम काम है। यह भी कहा जा सकता है कि वह मौजी स्वभाव का है, परन्तु जो मनोरंजन उससे प्राप्त होता है वह विशेष लाभदायक नहीं है। फिर भी मैं ऐसे व्यक्तियों को जानता हूँ, जो कि पालतू पशु के रूप में बन्दर के प्रति बड़ी सद्भावना रखते हैं, जिससे मानव-स्वभाव की विविधता का ही परिचय मिलता है।

---

१. कौपर (१७३१–१८०० ई०): अंगरेज कवि, जो कि अपने प्रकृति-प्रेम व प्राणी मात्र के प्रति दया भाव के लिए प्रसिद्ध थे। मुख्य रचना 'दी टास्क'।

२. तोरुदत्त: एक प्रतिभाशाली बंगाली महिला, जिन्होंने अंगरेजी में अच्छी कविता लिखी है। इनकी मृत्यु छोटी अवस्था में ही हो गई थी।

घरेलू चश्मा | ४

मेरे चतुर मित्र ने कहा, "आओ, घरेलू चश्मे पर चलें, और वहीं आज का दिन बिताएँ।" मेरे मन में उस दिन कोई उत्साह न था, इसलिए मैं किसी और दिन वहाँ जाना चाहता था। मैंने कहा, "आज वहाँ टाँग घसीटते जाने का क्या लाभ, जब कि वहाँ कोई संगी-साथी न होगा ? रविवार के अतिरिक्त और दिनों में तो वहाँ कोई आमोद-प्रमोद चाहने वाले लोग नहीं जाते; हमें किसी रविवार को वहाँ पहुँचना चाहिए, क्योंकि तब हमें मनोरंजन की बहुत-सी सामग्री मिल जाएगी।" मेरे मित्र ने कुछ खीझकर कहा, "इस बात को उस दृष्टिकोण से देखना उचित नहीं। हम कुछ बच्चे या स्त्रियाँ तो हैं नहीं, जो हमें दूसरों से मनोरंजन पाने की आवश्यकता हो। हम दोनों का साथ एक दूसरे के लिए लाभदायक हो सकता है। हम तो 'उपलों से उपदेश औ नदी-नीर में ग्रन्थ; तरुओं से शिक्षा मिले, चलो सदा सत्पन्थ' की बात मानते हैं। क्या तुम्हारे मत में इस घृणित स्थान से चले-चलना अच्छा न होगा ?" असन्तोष के भाव ने मेरे मित्र को बातूनी बना दिया था। मैं जानता था कि ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिए—उसके साथ बहस में पड़ना तो निरर्थक था। यह स्पष्ट था कि उसका मन होटल के उस कमरे से, जो कि देखने में सर्वथा सुखप्रद था, ऊब गया है—उसे तो उस स्थान से भी विरक्ति हो गई थी, जहाँ कि हम इतना खर्च करके व इतना कष्ट सहकर पहुँचे थे। हम वहाँ शान्ति व विश्राम पाने के लिए पहुँचे थे, परन्तु दो दिन वहाँ ठहरने के बाद ही उसका मन उकता गया। जहाँ हम दोनों इकट्ठे काम करते थे, वहाँ से चलने पर उसने कहा था, "आओ, यहाँ से निकल चलें। मैं तो, चाहे एक सप्ताह के लिए ही क्यों न हो, परिवर्तन चाहता हूँ।" उसकी प्रबल इच्छा को देखकर ही मैंने उसके साथ चलना स्वीकार कर लिया था। मैंने उसे अपने विश्रामस्थल ही नहीं, वरन् उस

होटल का भी चुनाव करने दिया था, जहाँ कि हमको ठहरना था। मैंने प्रत्येक बात में उसको अपनी इच्छा के अनुसार ही चलने दिया, क्योंकि मैं जानता था कि उसकी तबीयत में बेचैनी बहुत है। दो दिन तो वह पर्याप्त रूप में प्रसन्न रहा, परन्तु तीसरे दिन प्रातःकाल ही उसने फिर से असन्तोष प्रकट करना आरम्भ किया। उसने 'उपलों से उपदेश' वाली जो बात कही थी, उसमें भी कुछ व्यंग का भाव था। उसे इस प्रकार की निरर्थक कवि-सूक्तियों में कोई विश्वास न था। वह विचारशील प्रकृति का न था, और उसे पुस्तकों व प्रकृति से विशेष प्रेम न था। इस विचित्र संसार में वह सबसे अधिक विचित्र मनुष्य प्रतीत होता था। उसे अपने जीवन में दो बातों से ही लगाव था—अपना काम-धन्धा और खाने-पीने का चस्का। उसकी सदैव यह उत्कट अभिलाषा रहती थी कि वह अपने पेशे में सबसे ऊँचा पद प्राप्त करे। वह इसके लिए अथक परिश्रम करता था, और उसे किसी और बात की कामना न थी। उसे अच्छे खाने का भी शौक था। उसके जीवन का एक मुख्य उद्देश्य अतिथि-सेवा या अपने मित्रों की आव-भगत भी था। मैं कभी-कभी हँसी में उसे कहता था, "तुम्हारा जीवन-दर्शन तो केवल पाकेट और पेट पर निर्भर है।" उसे अपने पेशे से प्रेम था, क्योंकि उससे उसे धन मिलता था; और उसे खाने-पीने का शौक था, क्योंकि उससे उसे जिह्वा-रस की तृप्ति मिलती थी। वह मेरे सभी व्यंग वाक्यों को हँसी में उड़ा देता था। अपने काम-काज व रसोई के सिवा उसके जीवन में और कोई गम्भीर तत्त्व न था। वह कई बातों में सुखी था और मैं सदा उसके अच्छे स्वभाव पर ईर्ष्या किया करता था; परन्तु उस दिन वह कुछ अनमना-सा था—रूठकर अपने कैम्प में चले जाने वाले एकिलीज[1] के समान नहीं, वरन् एक ऐसे

---

१. एकिलीज: होमर की ईलियड में प्रमुख यूनानी महारथी। यूनानी सेनापति एगामेमनन से बिगाड़ हो जाने पर, यह रूठकर अपने कैम्प में चला गया तो ट्राजन लोगों ने यूनानी सेना को बहुत हानि पहुँचाई। फिर अपने मित्र पैट्रोक्लस की मृत्यु से कुपित होकर वह समरांगण में कूद पड़ा। ट्राजन सेना के नेता वीरशिरोमणि हैक्टर की हत्या करके इसने यूनानियों के सिर विजय का सेहरा बंधवाया।

क्लर्क के समान, जो कि अपने ही कमरे में मुँह फुलाए बैठा रहता है। मैं जानता था कि खुली हवा मेरे मित्र को बहुत लाभ पहुँचाएगी, क्योंकि ताजी हवा न केवल मनुष्य के शरीर को शक्ति देती है, वरन् उसकी नस-नाड़ियों, मन और अन्त:करण को भी पुष्ट करती है। मैंने सोचा कि सैर करने से उसका चित्त ठीक हो जाएगा, मैंने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

झटपट कलेवा करने के पश्चात् हम चश्मे की ओर चल पड़े, परन्तु शुरू से ही हममें एक प्रकार का मौन समझौता था कि रास्ते में हम दोनों अपने-अपने विचारों में ही लीन रहेंगे। हमें साथ-साथ चलना था, पर एक दूसरे की विचारधारा से कोई सम्बन्ध न रखना था, दोनों ने ही बड़ी समझ-दारी से मौन धारण किए रखा। मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि यदि मेरा मित्र किसी विषय पर व्याख्यान देने लगे तो मैं एक छोटे बच्चे के समान उसकी बातों को ध्यान से सुनूँ। मैं दत्तचित्त होकर उसके भाषण को सुनूँगा पर किसी बहस में न पड़ूँगा—मैं श्रोता हूँगा, समालोचक नहीं। हमारा वार्तालाप नाटकीय ढंग का न होगा—केवल वह स्वगत भाषण करेगा और मैं धैर्य से उसकी बात सुनूँगा। शायद कोई यह समझे कि यह हम दोनों के लिए एक बेढंगी स्थिति थी, परन्तु बात ऐसी न थी। हमारी मित्रता इतनी गहरी थी कि हमारा एक दूसरे के पास रहना ही हमारी आत्मा को बल देता व हमें सुख पहुँचाता था।

घरेलू चश्मा लगभग साढ़े चार मील की दूरी पर था। आकाश सर्वथा स्वच्छ था। हम दोनों ने सैर का खूब-खूब मजा उठाया। जो भी कोई व्यक्ति हमें मार्ग में मिलता वही संसार से सन्तुष्ट प्रतीत होता था। हमें कई हँसती-खेलती लड़कों व लड़कियों की टोलियाँ मिलीं। यह कुछ विचित्र बात है कि लड़के और लड़कियाँ अपने शरीर के अंगों के व्यायाम और अपनी जिह्वा के बेरोक-टोक प्रयोग से ही प्रसन्नता पाते हैं। वे बातें करते-करते चलना पसन्द करते हैं। वे जितने अधिक प्रसन्न होते हैं, उतनी ही उमंग के साथ बातचीत करते हैं। वे आपस में एक धीमे व निश्चयात्मक स्वर में वार्तालाप करने के स्थान में एक अस्त-व्यस्त-सी भाषा में बातचीत करते हैं। बात करते समय वे कुछ-कुछ नाटकीय हावभाव भी दिखलाते हैं—जो कुछ वे कहते हैं, उनके हाथों व आँखों से उसका समर्थन होता है। मैं तो कई

बार ऐसा सोचता हूँ कि चौदह वर्ष से कम आयु का प्रत्येक बालक अथवा बालिका भविष्य में एक्टर बनने का गुण अपने आपमें रखता या रखती है। जब वे बड़े हो जाते हैं और उनमें उत्तरदायित्व का भाव आ जाता है, तब उनका स्वभाव गम्भीर हो जाता है।

इनके अतिरिक्त हमने वयोवृद्ध व्यक्ति देखे जो कि भ्रमण को अपना कर्त्तव्य समझते थे। वे आरोग्यता के अभिलाषी थे और इस संसार में अपनी जीवनयात्रा को लम्बा करना चाहते थे। वे क्यों ऐसा करना चाहते थे, यह समझना तो कठिन है, क्योंकि हममें से अधिकांश के जीवन में एक दिन दूसरे से भिन्न नहीं होता, और हमारा जीवन प्रायः एकरस ही होता है, परन्तु सामान्य जीवन-प्रेम का भी तो कुछ महत्त्व है ही। नौजवानों का सड़क पर कोई चिन्ह भी न था—इससे मेरा चित्त उदास हुआ, क्योंकि यही लोग इस सूने संसार में कुछ-कुछ रौनक लाते हैं। हमने कई मज़दूर देखे, परन्तु वे सभी रोनी सूरत वाले थे। आदर्श जगत् में सभी प्रकार का श्रम सुखप्रद होगा और प्रत्येक व्यक्ति काम की पवित्रता और सुखदायकता का अनुभव करेगा। परन्तु हमारे इस संसार में, जो कि अपने आदर्श से पतित हो चुका है, काम करने से सदा सुख नहीं मिलता। सर हेनरी लाडर ने, जो कि स्काटलैण्ड के एक अद्वीतीय हास्यरस के नाटककार थे, एक बार एक मज़दूर को सड़क पर पत्थर फोड़ते देखा। उन्होंने उससे पूछा, "क्यों भई, क्या कर रहे हो?" वह मुँह फुलाए बड़े दुखी स्वर में बोला, "मैं पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े कर रहा हूँ।" कुछ देर के बाद उन्हें एक और मज़दूर मिला। उससे उन्होंने वही प्रश्न पूछा। उसने मुस्कराते हुए चेहरे से, बड़ी प्रसन्नता के स्वर में कहा, "मैं एक गिर्जाघर बनाने में सहायता कर रहा हूँ।" हमने जिन मज़दूरों को देखा था उनका अपने काम के सम्बन्ध में वैसा ही मत था, जैसा कि इस पहले मज़दूर का था। ऐसा प्रतीत होता था कि वे केवलमात्र अपना जीवन बनाए रखने के लिए ही एक नीरस काम कर रहे हैं। उन्हें इस बात का ध्यान न था कि वे उस सड़क की मरम्मत कर रहे हैं, जो कि उन दूरवर्ती पर्वतों व झीलों की ओर जाती है, जहाँ कि लोगों को शान्ति और विश्राम मिलता है। उनमें से एक ने हमारी ओर ऐसी द्वेषपूर्ण दृष्टि से देखा कि मैं तो कुछ भयभीत-सा हो गया। वह मानो

मन ही मन कह रहा हो, 'ये दो निकम्मे फिरन्तू आदमी मैदान से यहाँ आ पहुँचे हैं, और हमें इनके लिए सड़कों को सदा ठीकठाक रखना पड़ता है। ये लोग यहाँ पैसा खर्च कर मौज मनाते आते हैं, जब कि हमें दिन भर खून-पसीना एक करना पड़ता है। जितना धन ये लोग एक दिन में खर्च करते हैं, उतना तो हम महीनों में भी नहीं कमा सकते। इनके लिए जीवन एक निरन्तर अवकाश है, परन्तु हमारे लिए तो चक्की पीसने के समान है। ईश्वर की लीला कैसी विचित्र है!'

हमारे दाहिनी ओर वह ढलवान पहाड़ी थी, जिस पर लोगों ने अपनी कोठियाँ व बंगले बना रखे थे। इन सबके काल्पनिक नाम थे और इनमें वे लोग रहते थे, जिन्हें सांसारिक वैभव प्राप्त था। मैं यह नहीं कह सकता कि वे विश्राम व शान्ति के धाम थे, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ सुख की ही नहीं, विलास की भी सब सामग्री विद्यमान थी। हमारे बाईं ओर, पहाड़ी की तलहटी में, इन पर्वतों के वास्तविक वासियों की झोंपड़ियाँ थीं। उनके भीतर क्या कुछ था यह मैं नहीं कह सकता; परन्तु उनकी ढलवान छतें और उनका छोटा आकार देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका अपना एक सौन्दर्य है, जैसा कि पोस्टकार्डों के चित्रों में पाया जाता है। सड़क से कुछ नीचे मैंने दो स्त्रियों को घास काटते देखा। उनमें से एक स्त्री अधेड़ उम्र की थी। उसने सहिष्णुतापूर्ण ही नहीं, वरन् सद्भावना से युक्त दृष्टि से हमारी ओर देखा। दूसरी स्त्री युवती व विशेष आकर्षक थी। उसका व्यवहार घृणापूर्ण नहीं तो, उदासीनता से युक्त अवश्य था। एक साधारण जासूसी उपन्यास लेखक ने स्त्रियों को दो श्रेणियों में बांटा है–(१) संकोचशील (२) प्रगल्भ। अधेड़ आयु की स्त्रियाँ दूसरी श्रेणी में आती हैं, और युवतियाँ पहली श्रेणी में।

हम मस्तानी चाल से चलते हुए लगभग डेढ़ घंटे में घरेलू चश्मे पर जा पहुँचे। सारे रास्ते में हमें नीचे की ओर जाना था, और उतराई प्रायः सुगम थी। सड़क छायादार थी और वृक्ष, घने न होने पर भी, ऊँचे-ऊँचे थे। बहुत दूर पर पर्वतमालाएँ—सद्भावना से युक्त व भली भाँति परिचित—खड़ी थीं, और हमारे सिर पर सूर्य निर्मल आकाश में चमक रहा था। वहाँ फूल बहुत कम दिखाई पड़ते थे—और यदि वहाँ वे अधिक संख्या में होते तो भी

हम दोनों में से कोई भी उनमें विशेष रुचि न दिखाता। मैं तो कभी भी फूलों से विशेष रूप में आकर्षित नहीं होता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि फूलों में कुछ-कुछ स्त्रीत्व व आडम्बर का भाव होता है, और, यद्यपि मेरे विचार में, स्त्रियों का फूलों से प्रेम एक स्वाभाविक बात है, तो भी मैं यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि बहुत-से पुरुष उनकी प्रशंसा केवल इसलिए करते हैं कि वे अपनी स्त्रियों के प्रतिकूल नहीं चलना चाहते। हमें बहुत कम पक्षी दीख पड़े, यद्यपि उनमें से एक बार-बार लम्बे स्वर से चिल्लाता था। मुझे कभी भी यह विश्वास न हो सकता था कि वह एक गवैया पक्षी है। वह तो एक नाजी प्रचारक के समान प्रतीत होता था, जो कि अपने मत को केवल बार-बार दुहरा कर ही दूसरों के ऊपर लादने का यत्न करता है।

घरेलू चश्मे में लोगों को आकर्षित करने वाला कोई विशेष दृश्य न था। मैंने इससे कहीं अच्छे कई और चश्मे देखे थे, जिनके आसपास का जंगली वायुमण्डल इससे अधिक अच्छा था, और जहाँ लोगों के आराम करने के लिए अधिक उत्तम स्थान बने हुए थे। परन्तु इस विश्रामस्थली के लिए भी मैंने भगवान् का धन्यवाद किया, और एक पत्थर को तकिया बनाकर लेट गया। उन दिनों मैं चित्त की एकाग्रता पर एक पुस्तक पढ़ रहा था और मैंने उस चश्मे के जल की मर्मरध्वनि पर अपने चित्त को टिकाने का यत्न किया, परन्तु इससे कुछ लाभ न हुआ। यह कुछ विचित्र-सी बात थी, क्योंकि हम दोनों वहाँ अकेले ही थे और कोई आमोद-प्रमोद करने वाला व्यक्ति वहाँ न था। हम दोनों में भी कोई वार्तालाप का सम्बन्ध न था—दोनों अपने-अपने विचारों में लीन थे।

कुछ समय के बाद एक नवयुवक दम्पति, अपने दो बच्चों के साथ, वहाँ आ पहुँचे। पति महोदय तो बड़ी शान से चल रहे थे, परन्तु पत्नी के मुख पर उदासी छाई हुई थी। बच्चे बड़े दब्बू-से प्रतीत होते थे—शायद उनपर कठोर नियन्त्रण रखा जाता था। उनमें कोई उमङ्ग अथवा उत्साह न था और उनकी आँखें भी संकोच भरी थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि उस युवती ने जीवन के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है और उसका सब रूप-लावण्य नष्ट हो गया है। उनका नौकर उनकी भोजन-सामग्री उठाए चला आ रहा था। कोट व जूते के बिना ही उसका चलते जाना

सचमुच प्रशंसा के योग्य था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह युवक पहले कभी मुझे मिल चुका था। उसने मुझे ऐसे पुकारा जैसे कि कोई व्यक्ति किसी साधारण परिचय वाले मनुष्य को बुलाता है। इस पर मेरा मित्र सहसा पूछ बैठा, "यह कौन आदमी है?" मैंने कहा, "मुझे याद नहीं कि वह कौन है।" परन्तु, कुछ क्षण के बाद, मुझे एक घटना याद आई जो कि दस साल पहले घटी थी। वह लड़का, कालेज में पढ़ते समय, एक लड़की पर मोहित हो गया था और अपने एक सांझे मित्र के आगे उसकी बहुत प्रशंसा किया करता था। वह उससे विवाह करने में सफल हो गया था, परन्तु अब उसका यौवन व रूप-लावण्य, जिस पर कि वह मोहित हुआ था, सदा के लिए जाता रहा था। अब तो वह केवल नीरस घरेलूपन के गद्य की प्रतीक थी—उसमें प्रेमगीतिका की मनोहरता का सर्वथा अभाव था।

कुछ देर के बाद, तीन और पार्टियाँ वहाँ पहुँचीं—उनमें अधिकतर स्त्रियाँ और बच्चे ही थे। कुछ क्षण के पीछे एक और विवाहित जोड़ी वहाँ आ पहुँची। पति महाशय ने एक बड़े भयानक कुत्ते की जंजीर हाथ में पकड़ी हुई थी। मेरा मित्र, जिसकी स्वाभाविक मिलनसारी जागृत हो गई थी, उस भद्र पुरुष से कुत्ते के सम्बन्ध में बातचीत करने लगा। परन्तु उस भलेमानस को तो कुत्तों के बारे में कुछ पता ही न था। भाव यह कि उसके लिए एक कुत्ता केवलमात्र कुत्ता ही था, और कुछ नहीं। उसकी उसमें कोई विशेष रुचि न थी—वह तो केवल लोगों से प्रशंसा पाने की अभिलाषा से उसे साथ लिए फिरता था।

हम चश्मे पर तीन घंटे के लगभग ठहरे। फिर हम लौट पड़े, परन्तु मैं यह सोचे बिना न रह सका कि मनुष्यों की सबसे अधिक प्रवृत्ति खाने-पीने और गप्पें लड़ाने की ओर होती है। कोई भी व्यक्ति जो खाने-पीने को सुख का साधन बना सकता है, मनुष्य जाति की असीम सेवा कर सकता है। आजकल भोजन केवल हमारे दैनिक कार्यक्रम का अंग ही रह गया, इसीलिए लोग उसे रुचिकर बनाने के लिए, ऐसे नगर से दूरवर्ती स्थानों में जाते हैं। केवलमात्र भोजन से ही कितनी प्रसन्नता मिल सकती है, यह लोगों को चश्मे पर खाते-पीते देखकर ही जाना जा

सकता है। यदि भोजन मे प्राप्त होने वाली तृप्ति के साथ ही गप्पें लड़ाने के असंयत आनन्द को मिला दिया जाए, तो मनुष्य का सुख पूर्णता को पहुँच जाए। मेरे विचार में भविष्य के सुखमय जगत् में यह दोनों प्रकार की सुख-सामग्री सभी व्यक्तियों को प्राप्त होगी। यह उस सुखमय संसार का मानचित्र है, जिसकी रचना के लिए मैं उत्सुक हूँ।

मैं बोर्ड को साफ नहीं करूँगा | ५

जब गर्मी की छुट्टियों के बाद कालेज खुले तो पहले दिन ही प्रोफेसर अपनी क्लास में गया। यह कालेज की नहीं—यूनिवर्सिटी की क्लास थी, और इसमें नगर के सभी कालेजों के विद्यार्थी सम्मिलित थे। यह एक ऐसी क्लास थी, जिसमें मनोवैज्ञानिक एकता नाम को भी न थी। यह एक प्रकार का ढीला-ढाला संगठन था, जो कि सांझी शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं पर ही निर्भर था, नहीं तो इसमें और कोई भी मेल-मिलाप कराने वाली शक्ति न थी। कई बार इन शिक्षा सम्बन्धी बातों में भी उनकी आपस में टक्कर लग जाती थी, और केवल एक ही विषय ऐसा था, जो कि उन्हें परस्पर मिलाप की अवस्था में रख सकता था। परन्तु इस विषय को बहुत थोड़ा समय दिया जाता था, और जो कुछ कृत्रिम एकता इससे प्राप्त होती थी वह दिन के अधिकांश भाग में नष्ट हो जाती थी।

यह क्लास और कई बातों में भी खिचड़ी-सी थी। यह एक प्रकार से भारत व भारतीय जीवन के लिए एक दर्पण का काम देती थी। प्रायः सभी संप्रदायों के लोग इसमें मिलते थे। किसी समय शायद यह एक बहुत अच्छी बात होती, परन्तु उस समय ऐसा न था। भारत साम्प्रदायिक झगड़ों का एक अखाड़ा-सा बना हुआ है और यह साम्प्रदयिक मतभेद एक मौन व दबी हुई दशा में क्लास में भी प्रकट होते थे। यह एक सुलगती हुई आग थी, जो कि वायु के साधारण-से झोंके से भी भड़क कर लपटों का रूप धारण कर सकती थी। प्रोफेसर को बड़ी समझदारी से काम लेना पड़ता था। अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए उसे कभी-कभी उदाहरण देने पड़ते थे, जो कि कई बार भारतीय इतिहास से लिए जाते थे। अपने आपको पक्षपात से रहित सिद्ध करने के लिए वह इन उदाहरणों को भारतीय इतिहास के भिन्न-भिन्न कालों से लेता था। वह किसी हिन्दू राजा की ओर संकेत करते समय मुगलकाल के किसी न किसी शाही खान-

दान के व्यक्ति की बात किए बिना न रह सकता था। कुछ समय के लिए वह इन दो प्रकार के उदाहरणों से ही संतुष्ट रहा परन्तु एक दिन एक अल्पमत संप्रदाय का प्रतिनिधि उसके पास आकर बोला, "श्रीमान्‌जी, ऐसा प्रतीत होता है कि आप हमारी जाति के इतिहास के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। यह लीजिए, इस पुस्तक से आपको इस विषय में बहुत कुछ पता चल जाएगा। हम इस बात को पसन्द नहीं करते कि आप सदा हिन्दू और मुसलमानों की ओर संकेत करते हैं, और हमारी सर्वथा उपेक्षा करते हैं। हमारा अतीत काल अतीव गौरवशाली रहा है, और भविष्य भी उज्ज्वल है। इस छोटी-सी पुस्तक से आपको सब कुछ पता चल जाएगा। आगे से आप हमारी उपेक्षा न करें, क्योंकि आपको इस पुस्तक के पन्नों में महानता के इतने उदाहरण मिलेंगे, जितने कि कहीं और नहीं मिल सकते।" प्रोफेसर ने उसकी बात को धैर्य से सुना, और अपने तौर-तरीके बदलने का निश्चय कर लिया। परन्तु उसे यह न पता था कि इसका परिणाम क्या होगा। इसलिए उसने भारतीय इतिहास की ओर संकेत करना, यथा संभव छोड़ दिया। यदि स्वभाव के प्रभाव से ऐसी कोई बात उसके व्याख्यान में आ जाती, तो वह उसके लिए पश्चात्ताप अनुभव करता था। उसके लिए, भारत की अपेक्षा, चीन व रूस की बात करना अधिक सुगम था, क्योंकि चीन और रूस किसी प्रकार की साम्प्रदायिक प्रतिक्रिया न उत्पन्न करते थे।

क्लास का वातावरण एक और प्रकार से भी उलझा हुआ था। आजकल भारतीय विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी विशेष रूप में सचेत हैं, परन्तु बौद्धिक क्षेत्र में इतने नहीं, जितने कि राजनैतिक क्षेत्र में। कई 'वादों' के इस युग में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वे उनमें से किसी न किसी में रुचि रखते हैं। वे भारी पार्टीबाज होते हैं और बड़े जोशीले पक्षपाती। इनमें से कई वाद तो विदेशों की देन हैं, और कई भारत में ही उत्पन्न हुए हैं, परन्तु प्रत्येक के अपने-अपने अनुयायी हैं। न जाने क्यों नवयुवकों में संघ बनाने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती है, और वे एक झण्डे के नीचे इकट्ठे होना पसन्द करते हैं? इस बात का कोई महत्व नहीं कि वह झण्डा कैसा है—केवल उसका रंग चमकीला व आकर्षक होना चाहिए। इसके साथ ही नवयुवकों में शोर मचाने की भी रुचि होती है। यदि वे खेलों के समय उपस्थित न हों

तो उनका बहुत-सा मजा मारा जाए। वे ही खिलाड़ियों का उत्साह बढ़ाते है या उनपर गाली वर्षा करते हैं—वे ही बड़े जोर-शोर से जयजयकार करके विजय मनाते हैं, और वे ही पराजय के समय धिक्कार के नारे लगाते हैं। उनके जीवन में आनन्द मनाने का एक मुख्य साधन है—नारे लगाना। कई वर्ष हुए, एक बूढ़े अध्यापक ने, जो कि मनोविज्ञान में निपुण था, मुझसे कहा, "नौजवानों को तो बस एक झण्डा हिलाने के लिए और एक नारा लगाने के लिए मिल जाना चाहिए, बाकी सब काम वे स्वयं ठीकठाक कर लेंगे।" परन्तु जब मैंने पूछा कि उन्हें किस प्रकार का झण्डा व नारा चाहिए, तो वह इस बात का कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सके। मैंने इस बात का कुछ बुरा न मनाया। जैसे एक अध्यापक विद्यार्थियों को घर का काम देने में निपुण होता है, वैसे ही राजनीतिज्ञ नारे घड़ने व झण्डे बनाने में कुशल होते हैं। ऐसी क्लास में नारों का गड़बड़झाला होता था, और झण्डों की बहुतायत। इसका यह अर्थ नहीं कि झण्डे सदा उड़ते रहते थे और नारे सदा लगाए जाते थे, और इस बात की परवाह न की जाती थी कि प्रोफेसर इससे प्रसन्न होता है अथवा घबराता है। इसका भाव केवल यह है कि झण्डे वहीं रखे रहते थे और उचित अवसर आने पर उन्हें फहराया जा सकता था। नारों की भी यही बात थी। यह आवश्यक न था कि वह अवसर सदा राजनैतिक ढंग का ही हो। यदि कोई प्रोफेसर, नियम भंग करने पर किसी छात्र को जुर्माना करता, तो उसे उसके अपराध की गंभीरता का भली प्रकार ज्ञान करा दिया जाता था। यदि वह कोई कठिन काम देता था, तो उसे उसकी मूर्खता की सूचना दे दी जाती थी। गरज, प्रत्येक प्रोफेसर यही कहता था, "इस क्लास को सँभालना एक कठिन काम है।" विद्यार्थियों को भी अपनी शक्ति का कुछ कम आभास न था। वे अपने आपको एक जहाज के विद्रोही मल्लाहों के समान समझते थे, जो कि समस्त कार्य-कलाप को स्थगित कर सकते हैं।

एक और भी कठिनाई थी। इस क्लास में लड़के-लड़कियाँ मिले-जुले थे—अधिक संख्या तो लड़कों की थी, पर मुट्ठी भर लड़कियाँ भी थीं। सहशिक्षा के पक्ष में बहुत-सी बातें कही गई हैं, परन्तु इसके पक्षपातियों में से कोई भी इस बात को ध्यान में नहीं रखता कि, कम से कम भारत के

लिए तो यह एक नई वस्तु है और भारतवासियों को इससे भली प्रकार परिचित होने में अभी कई वर्ष लगेंगे। नवयुवकों में तो यह बात विशेष रूप से पाई जाती है। सहशिक्षा एक ऐसा प्रकाश है जो कि कभी-कभी उनकी दृष्टि में चकाचौंध उत्पन्न कर देता है और कभी-कभी उन्हें अन्धा ही बना देता है। कइयों के मन पर इसका उत्तेजनात्मक प्रभाव होता है, और वे न केवल शोर मचाने लगते हैं, वरन् उपद्रव भी करने लग जाते हैं। कई और व्यक्तियों को यह संयम का पाठ पढ़ाती है, और उनका स्वभाव विरक्त साधुओं का-सा हो जाता है। ऐसे बहुत कम लोग होते हैं, जो कि इसको जीवन की एक साधारण घटना समझते हैं। किसी व्यक्ति के लिए यह समझ लेना कठिन था कि प्रत्येक छात्र पर इस परिस्थिति का प्रभाव कैसा पड़ा, परन्तु यह तो अनुभव की बात थी कि उनमें से बहुत-से इस नई शराब को पीकर पागल हो गए थे। यह स्पष्ट था कि क्लास अड़ियल-सी हो गई थी और उसे वश में रखना कोई सुगम काम न था।

प्रोफेसर को पहली बार ही ऐसी क्लास से वास्ता पड़ा था। यह बात प्रसिद्ध थी कि वह एक कठोर अध्यापक है—ऐसा अध्यापक जो कि किसी प्रकार की बेहूदगी को नहीं सह सकता। परन्तु उसकी कठोरता उसके वास्तविक स्वभाव का अंग न थी। उसने तो इन युवकों की उच्छृंखलता से अपने आपको बचाने के लिए ही इसे अपनाया था। कभी-कभी उसे जुर्माना करना, दण्ड देना अथवा नियमन करना पड़ता था, परन्तु ये काम उसके स्वभाव के प्रतिकूल थे। उसके शिष्य जानते थे कि नियन्त्रण की सब बातें एक प्रकार की गीदड़भभकियाँ ही हैं; अतः उन्होंने उसकी कमजोरी से लाभ उठाना आरम्भ किया। जब कभी कोई विद्यार्थी उसके कोप का शिकार हो जाता, तो वह बचने का उपाय भी जानता था। उसे केवल थोड़ा-सा नाटक करना होता था—पश्चात्ताप की मुद्रा बनाकर, विनय तथा शोक प्रकट करने का ढोंग रचकर दो-चार बार ये शब्द दुहराने होते थे—"श्रीमान् जी, मुझे अपने किए पर दुःख है।" प्रोफेसर एकाध बार यूं ही विरोधात्मक स्वर में कहता, "तुम्हारा पछतावा सच्चा नहीं है।" परन्तु विद्यार्थी यह जानता था कि प्रोफेसर का हृदय इन बातों से पिघल जाएगा—और बात भी ऐसी ही थी। दो-चार मिनट के बाद प्रोफेसर का क्रोध शान्त हो

जाता और वह उस विद्यार्थी को 'सौजन्य के लाभ' पर एक छोटा-सा व्याख्यान देकर दण्ड से मुक्त कर देता था। वह कुछ ऐसे वाक्य कहता था, "तुम जानते हो कि मैं तुमसे भलेमानसों का-सा व्यवहार करता हूँ। मैं तुम सबको भलेमानस समझता हूँ और आशा करता हूँ कि तुम सब भलमन्साहत से काम लोगे। तुम कभी-कभी ओछे काम करते हो, और अनुचित बातें कहते हो–इनसे मुझे खीझ आ जाती है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि तुमने अब अपनी भूल को समझ लिया है। अब आगे के लिए कभी कोई ऐसा काम न करना, जिससे मुझे खीझ आए।" विद्यार्थी आग्रह-पूर्वक यह कहकर वहाँ से रफूचक्कर हो जाता था कि 'मैं आगे से ऐसा न करूंगा जी।' प्रोफेसर अपने आपमें भली प्रकार समझता था कि लड़के के इन शब्दों का कोई अर्थ न था। कभी-कभी तो उसे यह भी सन्देह हो जाता था कि कहीं 'मैं आगे से ऐसा न करूँगा जी' इन शब्दों का यह अभिप्राय तो नहीं कि उसने भलामानस न बनने का निश्चय कर लिया है; परन्तु वह ऐसे सन्देहों को अपने मन में टिकने न देता था। वह दयालु स्वभाव का था, और अपने चारों ओर करुणा और मैत्री का प्रसार करना चाहता था। उसके लिए वैमनस्य के वातावरण में रहना कठिन था, और वह अपने व अपने विद्यार्थियों के बीच में किसी प्रकार की तनातनी को पसन्द न करता था। वह कई बार अपने मन में कहता था, 'यदि संघर्ष व मनमुटाव का वातावरण ही मेरे अनुकूल होता, तो मैं एक पुलिस का कर्मचारी बन जाता। परन्तु मेरी अध्यापक बनने की इच्छा से ही यह स्पष्ट है कि मैं मैत्री व सद्भावना के वायुमण्डल में रहना चाहता हूँ।' उसके जीवन का तत्त्व यह था; तो उसके मन में सबसे अच्छी बात यह थी कि विद्यार्थियों से, बिगा-ड़ने के स्थान में, मित्रभाव स्थापित किया जाए।

उस दिन वह क्लास में हँसमुख व मिष्टभाषी बनने का निश्चय करके गया था। यहाँ तक कि उसने एक-दो लतीफों को, जिन्हें वह अपने छात्रों को प्रसन्न करने व आशावादी बनाने के विचार से सुनाना चाहता था, अपने मन में ही दुहरा लिया था। उसने रस्मी लेक्चर न देने का निश्चय कर लिया था, और अपने छात्रों से केवल यह पूछना चाहता था कि उन्होंने अपनी छुट्टियाँ कैसे बिताई थीं और अपने समय का कैसे उपयोग किया था।

कई बार उसके मन में आई कि लड़कों से पूछे कि उन्होंने किस प्रकार अपने अवकाश का दुरुपयोग किया और अपने समय को नष्ट किया; परन्तु उसने ऐसा न किया, क्योंकि वह समझता था कि यह बात उसे शोभा न देगी। उसने उनसे यह बात पूछने का निश्चय कर रखा था कि उन्होंने कोई पुस्तकें पढ़ी थीं या नहीं। वह जानता था कि ऐसे अवसरों पर लड़के पूरी सचाई से काम नहीं लेते और ऐसी पुस्तकों के नाम ले देते हैं, जिन्हें कि उन्होंने देखा तो होता है, परन्तु पढ़ा नहीं होता, परन्तु उसके लिए कम से कम उस दिन तो, इस बात का कोई महत्त्व न था। वह जानता था कि उसे तब अवश्य ही क्रोध आ जाता था जब कि वह उनसे पूछता कि उन्होंने कितने निबन्ध लिखे हैं और उसे यह पता चलता कि उनमें से अधिकांश मौज-मेला ही करते रहे हैं। परन्तु उस दिन उसने पक्का विचार किया हुआ था कि अपनी सद्भावना के मार्ग में कोई बाधा नहीं आने देगा। उस दिन वह ब्राउनिंग[1] के साथ इस बात में सहमत था कि 'जब लौं ईस बसै आकासा, तब लौं जग महँ मोद बिगासा।'

यह सच है कि प्रोफेसर क्लास में बैठा था, परन्तु वहाँ सब कुछ ठीक-ठाक न था। उसने अभी अपना काम शुरू ही किया था कि उसकी दृष्टि अचानक ही दीवार पर लटकने वाले ब्लैकबोर्ड पर पड़ी। वहाँ उसने एक ऐसी बात लिखी हुई देखी, जिससे कि उसे मानो काठ मार गया। जब उसने 'मैं तुम्हारा प्रेमी हूँ' ये शब्द पढ़े तो उसे तो जैसे साँप ही सूँघ गया। पहले तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। उसने समझा कि यह एक प्रकार का इन्द्रजाल है। उसने आँख बचाकर देखा। प्रत्येक अक्षर मानो उसे घूर-

१. ब्राउनिंग (१८१२–८९ ई०): महारानी विक्टोरिया के राज्य-काल के प्रसिद्ध अंगरेज कवि व नाटककार। इनकी रचनाओं में मानव-हृदय की गूढ़तम भावनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण पाया जाता है। इन्होंने अनेक उच्च कोटि के प्रेम गीत लिखे हैं। काव्य रूप में नाटकीय स्वगत भाषण की शैली का सफल प्रयोग सबसे पहले इन्हीं ने किया। यह एक महान् आशा-वादी लेखक थे। प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पेरासैल्सस', 'स्ट्रैफर्ड', 'पिप्पा का निष्क्रमण', 'पुरुष व स्त्रियाँ' इत्यादि।

घूरकर देख रहा हो और न्याय की माँग कर रहा हो। उसको यह बात बहुत अनुचित प्रतीत हुई कि नवयुवक अपनी क्लास की लड़कियों के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें लिखें। उसके विचार में यह बड़ी गिरावट की बात थी। उसने सोचा, 'यह तो मेरे लिए भी निन्दा की बात होगी।' उसे अपनी अच्छाई पर ही सन्देह होने लगा और वह सोचने लगा कि आधुनिक शिक्षा लड़कों को कुछ लाभ भी पहुँचा रही है कि नहीं। उसकी आँखों के सामने पतित मनुष्यों के दुष्टतापूर्ण जगत् का दृश्य आ उपस्थित हुआ।

क्षण भर के लिए उसे यह न सूझा कि क्या करना चाहिए। वह इस बात को छिपाकर न रख सकता था कि उसने उन अतीव उत्तेजनात्मक शब्दों को पढ़ा था। वह जानता था कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। अध्यापक के रूप में उसकी मर्यादा की यह माँग थी कि वह इस विषय को यों ही न टाल दे। वह इस बात को समझता था कि यह पता लगाना असम्भव था कि वह वाक्य किसने लिखा है। यदि वह इस बात का अनुसंधान करने लगता तो वास्तविक अपराधी का पता लगाने में बहुत समय लगता। अतः उसने सोचा कि सबसे अच्छी बात यही है कि इस वाक्य को मिटवा दिया जाए और फिर इनकी कुछ डाँट-डपट की जाए।

उसके बाईं ओर पहली पंक्ति के परले सिरे पर एक युवक बैठा था। प्रोफेसर ने मुख मोड़ा और उसे आज्ञा दी, "इस आक्षेपजनक वाक्य को मिटा दो।" उसके विचार में यह एक साधारण-सी माँग थी, परन्तु उस युवक ने इसका और ही अर्थ समझा। वह खड़ा तो हो गया, परन्तु उसने आज्ञा पालन करने से इनकार कर दिया। उसने यह युक्ति दी, "श्रीमान्, मैं ऐसा क्यों करूँ? मैंने तो इसे लिखा नहीं है और दूसरे, हम कालेज के विद्यार्थियों के साथ चपरासियों का-सा व्यवहार नहीं होना चाहिए। यदि आप बोर्ड को साफ करवाना चाहते हैं तो कालेज के किसी नौकर को बुला भेजिए।" ये शब्द प्रोफेसर पर बम के समान गिरे, और सभी विद्यार्थी प्रोफेसर और उस छात्र के बीच में होने वाले द्वन्द्वयुद्ध की बड़े कौतूहल से प्रतीक्षा करने लगे। वह लड़का बहुत बातूनी, और वाद-विवाद में निपुण था। प्रोफेसर को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने बाघ का मुँह चूम लिया है। परन्तु उसने युवक के साथ नर्मी से पेश आने का यत्न किया और कुछ ही

समय में उसे अपनी शिक्षा के अनुसार चलने के लिए मना लिया।

परन्तु जब लेक्चर समाप्त हो गया तो वही युवक प्रोफेसर के पास जाकर बोला, "श्रीमान् मैं आगे से बोर्ड साफ नहीं करूँगा। कृपया हमें ऐसे काम करने के लिए न कहा करें। हम इसे बुरा मानते हैं। हम सभी इसके विरुद्ध हैं।" उसने यह बात बड़ी दृढ़ता व आग्रह के साथ कही, परन्तु प्रोफेसर यह न समझ सका कि उसने उस युवक को बोर्ड साफ करने के लिए आज्ञा देकर कौन-सा अपराध कर दिया था।

तीन दिन के बाद उसे वही युवक, बाग में सैर करता हुआ मिला। उसने उससे मित्रता प्रकट करने का यत्न किया और उसके साथ बातचीत करने लगा। उसे शीघ्र ही पता चल गया कि उसी लड़के ने ब्लैक बोर्ड पर वे आपत्तिजनक शब्द लिखे थे। भेद खुल जाने पर वह लज्जित-सा हो गया था। जब प्रोफेसर क्लास से चला गया तो विद्यार्थियों ने उसे छेड़ना शुरू कर दिया था। आत्मरक्षा के विचार से ही उसने प्रोफेसर के पास जाकर कहा था, "मैं आगे से ब्लैक बोर्ड को साफ नहीं करूँगा।" उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रोफेसर ने जो काम किया है वह उसके आत्मसम्मान के लिए घातक है। प्रोफेसर के इस व्यवहार ने उसे तुच्छ व भीरु व्यक्ति के रूप में उपस्थित किया था। उसे यह ज्ञान न था कि यह घटना अचानक ही घटी थी। प्रोफेसर को उसके अपराध का लेशमात्र भी ज्ञान न था, और उसकी कदापि यह इच्छा न थी कि उसका भण्डाफोड़ किया जाए। चाहे कुछ भी हो, युवक को यह ज्ञान न था कि आत्मसम्मान का अर्थ दूसरों के प्रति मान का भाव है—कोई भी व्यक्ति अपना मान तब तक नहीं कर सकता जब तक कि वह दूसरों—सभी छोटे-बड़ों—के लिए वैसा ही मान का भाव प्रकट करने के लिए उद्यत न हो।

रेस्ट हाउस | ६

तुमने डब्ल्यू बी० यीट्स[1] की प्रसिद्ध कविता 'इन्निसफ्री की झील का द्वीप' पढी है क्या ? तुमने अवश्य उसे पढ़ा होगा, यद्यपि मैं यह नहीं कह सकता कि किस परिस्थिति में। यदि तुमने उसे अपने पढने के कमरे के शांत वायुमण्डल में पढा है, तो मुझे पूरा विश्वास है कि तुमने उसके काव्यमय रस का आनन्द प्राप्त किया है। सम्भव है कि किसी मित्र ने तुम्हें इस कविता को पढ़ने की प्रेरणा दी हो, और तुम्हें वह पुस्तक भी उधार दे दी हो, जिसमें कि इस कविता का विलक्षण रत्न पाया जाता है। तुम उस कविता के अमूल्य कोष को अपनी जेब में डालकर या बगल में दबाए घर को लौटे होगे। तुमने आराम से कुर्सी पर बैठकर या बिस्तर में लेटकर इसे पढा होगा। तुमने इसके प्रत्येक शब्द या शब्दांश का आनन्द ऐसे ही अनुभव किया होगा, जैसे कि वह व्यक्ति, जिसे अच्छी भूख लगी है और अच्छी तरह पकाए हुए और स्वादिष्ट भोजन का, जोकि उसे परोसा जाता है, मजा लेता है। इसे पढ़ने के बाद तुमने एक जाग्रत स्वप्न में वैसा ही स्थान देखा होगा और उसकी यात्रा भी (कल्पना की सहायता से ही सही) की होगी। तुमने वहाँ एक सुखमय कुटिया बनाकर उसके आसपास वृक्ष व फूलोंवाले पौधे भी लगाए होंगे। वहाँ तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता अथवा अशान्ति का भय न रहा होगा। तुम्हें जीवन की व्यग्रताएँ, अधिकार के उत्तरदायित्व व संसार के कष्ट-कलाप सभी भूल गए होंगे। वहाँ तुम अपने चित्त की प्रसन्नता के लिए काम करते रहे होगे, न कि दूसरों से प्रशंसा पाने के लिए।

---

१. डब्ल्यू० बी० यीट्स (१८६५–१९३९) : आयरलैंड के प्रसिद्ध कवि व नाटककार। इनकी संगीतमय शैली इनकी रचनाओं की विशेषता है।

वहाँ तुम्हें शान्ति व सन्तोष की प्राप्ति हुई होगी। सारांश, तुम्हें डटकर काम करने या निरन्तर प्रयत्न करने से उसकी प्राप्ति न हुई होगी—वे तुम्हारे पास स्वयं पहुँच गई होंगी। उन्होंने तुम्हें खोजकर पाया होगा और तुम पर उनकी वर्षा ऐसे ही हुई होगी जैसे 'मन्न'[१] (स्वर्गीय भोजन) की आकाश से, और उन्होंने तुम्हें चारों ओर से घेर लिया होगा।

मैने अपने जीवन में कई ऐसे स्वप्न देखे हैं। एक समय था जब कि मैं इस प्रकार के स्वप्नों का सुख अनेक बार अनुभव किया करता था। उदाहरणार्थ, मै जब स्कूल में पढ़ता था, तो प्राय: यह कल्पना किया करता था कि मै घोड़े पर सवार होकर इधर-उधर चक्कर काट रहा हूँ, स्कूलों का निरीक्षण कर रहा हूँ और स्कूल के भयभीत छात्रों की परीक्षा ले रहा हूँ। अध्यापकों को अपने आगे साष्टांग प्रणाम करते देखकर मुझे एक प्रकार की दुर्जनतापूर्ण प्रसन्नता प्राप्त होती थी। तुम कह सकते हो कि इस प्रकार के जाग्रत स्वप्नों से मैं अपनी आलसी व साधारण सत्ता के अभाव की पूर्ति करने का यत्न कर रहा था। चाहे कुछ भी हो, इन जाग्रत स्वप्नों से मुझे बहुत सुख मिलता था। फिर मैंने स्कूलों का इन्स्पेक्टर बनने का विचार छोड़ दिया और रेलवे गार्ड बनने का स्वप्न लेना आरम्भ कर दिया। मैं, अपनी कल्पना की सहायता से, अपने आपको लाल व हरी झण्डी हिलाते देखने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता कि मेरे जरा-सा झण्डी हिलाने पर गाड़ी सीटी देकर चल पड़ती है और मैं चलती गाड़ी पर चढ़ जाता हूँ। कभी-कभी मुझे ऐसा भी जान पड़ता कि मैंने गाड़ी के फुट बोर्ड पर अपना शारीरिक संतुलन इतनी ही आश्चर्यजनक सुगमता से कर लिया है, जितनी से नट कसी हुई रस्सी पर चलते समय करता है। मैं अपनी काल्पनिक दृष्टि से देखता कि प्लेटफार्म पर खड़े हुए लोग मेरी ओर देख रहे हैं, और अस्पष्ट स्वर में मेरी प्रत्येक चेष्टा की प्रशंसा कर रहे हैं। इन जाग्रत स्वप्नों के

---

१. मन्न : बाईबल की एक कथा की ओर संकेत है। जब हजरत मूसा यहूदियों को मिस्र देश के राजा की पराधीनता से छुड़ाकर इसराईल की ओर ले जा रहे थे, तो मरुस्थल में ईश्वर ने उनके खाने-पीने के लिए यह स्वर्गीय भोजन भेजा।

समय मैं एक लम्बे कद का नौजवान होता था, और एक सुघड़ यूनिफार्म पहने रहता था।

शोक ! अब वे जाग्रत स्वप्न भूतकाल की बात हो गए हैं। लोग कहते हैं कि इन स्वप्नों में सुख की भावना करना मूर्खता है। वे तो मुझे इस बात के लिए बुरा-भला भी कहते हैं कि मैंने अपने स्वभाव में रोग प्रवणता के अंश को क्यों घुसने दिया है। सच पूछो तो, मुझे 'मूर्ख' बनने में कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मुझे अस्वस्थ प्रकृति का होने से घृणा है। अस्वस्थता का भाव तो पागलपन से मिलता-जुलता है, और इस संसार में, जहाँ कि पागलपन की मात्रा पहले ही बहुत अधिक है, मैं पागल नहीं बनना चाहता। कुछ वर्ष हुए, मैंने एक पुस्तक में एक वाक्य पढ़ा था, जिसने मेरे स्वप्नजगत् में प्रलय-सी मचा दी। वह कुछ इस प्रकार का वाक्य था, 'हवाई किले बनाओ, परन्तु उनके लिए नींव का भी प्रबन्ध कर दो।' मुझे यह सूक्ति किसी व्यावहारिक मनोविज्ञान की पुस्तक में न मिली थी। मैंने तो इसे अकस्मात् एक ऐसी पुस्तक में देखा था, जिसका लेखक एक नितान्त स्वतन्त्र प्रकृति का व व्यावहारिक ज्ञान से शून्य व्यक्ति था। वह बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण बातें करता था, तब कि वह स्वयं चाहे बड़े से बड़े पागलपन के काम करता हो। परन्तु यह बड़े शोक की बात है कि, इस वाक्य ने मेरे स्वप्नजगत् का सर्वनाश कर दिया है। इस भोले-भाले लेखक ने मुझ पर एक अनुचित प्रभाव डाला है, क्योंकि उसने मुझे इस निर्दोष व कमखर्च वाले मनोरंजन के साधन से वंचित कर दिया है। एक प्रकार से, मैं उन लोगों की श्रेणी में रह रहा हूँ जो कि नींव भरने की अपेक्षा, मुंडेर के पत्थर जोड़ने में अधिक रुचि रखते हैं। परन्तु मैंने ऐसा भी तो किसी युक्तिसंगत रूप में नहीं किया। मैं तो नींव अथवा दोनों के बीच की वस्तुओं की उपेक्षा करके, केवल मुंडेर की ही चिन्ता करता रहा हूँ। कई लोग सदैव नींव की ही चर्चा करते हैं, और क्षण भर के लिए भी इमारत के ऊपरी भाग का विचार नहीं करते। तुम शायद ऐसा सोचो कि ये लोग भवन-निर्माण कला के क्षेत्र में बेढंगी चाल चलने वाले हैं। बात ठीक है, परन्तु तुम्हें यह याद रखना चाहिए कि ये 'खब्ती' लोग कभी इस संसार पर भयंकर जादू का-सा प्रभाव डाल लेते हैं। आधु-

निक जगत् के दो बड़े 'खब्तिग्रों'—मुसोलिनी श्रौर हिटलर[1] को ही देखो; इनमें से पहला तो मुंडेर सजाने में ही मस्त रहता था, श्रौर दूसरा नींव भरने में। एक ने इस बात को भुला दिया था कि मुंडेर के नीचे से नींव तक भी इमारत होनी चाहिए श्रौर दूसरे ने इस बात पर ध्यान न दिया था कि नींव को एक चिरस्थायी स्मारक का ग्राधार बनाना चाहिए, न कि एक क्षणभंगुर इमारत का। परन्तु इन लोगों को एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। इन्होंने अपने जाग्रत स्वप्नों को राजनैतिक वास्तविकता का रूप देने का यत्न किया; इसीलिए उनका सर्वनाश हो गया। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो इन जाग्रत स्वप्नों को एक लक्ष्य के रूप में ही देखता रहा हूँ, श्रौर मैंने इन्हें दैनिक जीवन में परिणत करने का कभी यत्न ही नहीं किया। शायद तुम कहो कि यही तो समझदारी की बात है। मैं तो तुमसे सर्वथा सहमत हूँ, परन्तु कई मनोवैज्ञानिक ऐसा न करेंगे।

इसका यह अर्थ नहीं कि मैं इस मार्ग से प्राप्त होने वाले सुख को सर्वथा अस्वीकार करता हूँ। केवल तपस्वी लोग ही आत्मत्याग का अभ्यास करते हैं। मैं तो एक प्रकार से विलासप्रिय व्यक्ति हूँ, श्रौर मैं सुख के इस समृद्ध व असीम स्रोत का परित्याग नहीं कर सकता। परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे जाग्रत स्वप्नों की भावना में अब अन्तर आ रहा है। मेरे एक मित्र ने, जो कि वर्तमान मनोविज्ञान का पण्डित है, मुझे बताया है कि जिस दिशा में अब मेरे जाग्रत स्वप्न चल रहे हैं, वह मेरे लिए भयजनक है। उससे पता चलता है कि मैं अब बूढ़ा हो रहा हूँ श्रौर मेरी आयु का श्रेष्ठतम भाग समाप्त हो चुका है। कोई भी मनुष्य तब तक जवान होता है, जब तक कि उसे केवल गात्र शक्ति व शासन के स्वप्न आते रहते हैं। उदाहरणार्थ, जब मेरे स्वप्नों का केन्द्र इन्स्पेक्टर अथवा रेलवे गार्ड था, तब मैं, अज्ञात रूप से संसार भर का स्वामी बनने की सोच रहा था। मेरे मित्र के

---

१. मुसोलिनी (१८८१–१९४४ ई०) : इटली का तानाशाह। हिटलर (मृत्यु १९४५ ई०) : जर्मनी का डिक्टेटर।

कथानुसार, मै उस समय नेपोलियन [1] अथवा तैमूरलंग [2] का पूर्वरूप था। मै उसके इस वचन का अर्थ नहीं समझ सका; क्योंकि मेरे विचार में तो, नेपोलियन व तैमूरलंग जैसे व्यक्तियों की दशा बड़ी शोचनीय है, और उनका दुर्भाग्य, एक प्रकार से, मनुष्यमात्र को चेतावनी दे रहा है।

मैं तो अब शक्ति के स्थान में शान्ति के स्वप्न देखता हूँ। मैं अपनी भुजाओं में उतना बल नहीं चाहता, जितना कि अपने चित्त में शान्ति। परन्तु यह कोई सुगम काम नहीं है। मुझे बताया गया है कि मेरी इच्छा-पूर्ति का एकमात्र साधन वैराग्य है—मुझे चाहिए कि किसी मठ में जा टिकूँ और संसार से बिल्कुल किनारा कर लूँ। मुझे जीवन को केवलमात्र भ्रम समझना चाहिए, इन्द्रियों के विकारों को दोषमय व कामनाओं को झूठा जानना चाहिए। परन्तु मै इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता। सब बातों के होते हुए भी, मुझे इस जीवन में बहुत रस मिलता है, और ऐसा प्रतीत होता है कि यदि एक मनुष्य अपने सभी मनोविकारों व कामनाओं का परित्याग कर दे तो भी वह शान्ति के लिए प्रबल इच्छा व मानसिक सुख की आकांक्षा को न छोड़ सकेगा। इसलिए वैराग्य का मार्ग मेरे लिए ठीक नहीं है। तो फिर मुझे शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? मैं समझता हूँ कि कवि का (बताया हुआ) मार्ग मेरे लिए सबसे श्रेष्ठ है। मैं एक सुन्दर स्थान ढूंढ़कर, वहाँ एक छोटी-सी कुटिया बना लूंगा, और वहीं सुख और शान्ति से,

---

१. नेपोलियन (१७६९–१८२१ ई०) : फ्रान्स की राज्यक्रांति के बाद, पहले तो इसने क्रान्ति के शत्रुओं को ठिकाने लगाया और फिर शासन-सूत्र को अपने हाथ में लेकर सम्राट बन बैठा। इंगलैंड के अतिरिक्त यूरोप के प्रायः सभी देशों के राजाओं को इसने युद्ध में हराया अथवा अपने वश में कर लिया। वाटरलू के युद्ध में ड्यूक आफ वेलिंगटन के हाथों इसकी पराजय हुई और इसे सेंट हेलेना के टापू में कैद किया गया। वहीं इसकी शोकजनक मृत्यु हुई।

२. तैमूरलंग : प्रसिद्ध तातारी विजेता, जिसने १३९८ में भारत पर आक्रमण किया। यह जहाँ कहीं जाता था वहीं भीषण रक्तपात व हत्याकाण्ड मचा देता था।

बिना किसी विघ्न-बाधा के, अपना जीवन व्यतीत करूँगा।

उचित स्थान की खोज करना कोई सुगम काम नहीं है। कुछ वर्ष हुए मैं काश्मीर की सुन्दर घाटी में गया हुआ था। वहाँ एक सज्जन से मेरी मित्रता हो गई। उन्होंने मुझसे आग्रहपूर्वक कहा, "आप मेरे साथ अमुक नगर में चलें, जो कि मेरा जन्मस्थान है। मैं आपको वह घर दिखाऊँगा, जहाँ कि मेरा जन्म हुआ था, और वे सभी स्थान भी जिनका मेरे बचपन से सम्बन्ध है।" मैं, अपनी इच्छा के विरुद्ध ही उनके साथ चल पड़ा, क्योंकि मैं जानता था कि इस प्रकार मैं अपने समय का अच्छे ढंग से उपयोग कर सकूँगा। वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि वह घर, जहाँ उसका जन्म हुआ था, अब केवल एक खण्डहर रह गया है। जब हमने वहाँ रहने वालों से उस घर के सम्बन्ध में पूछताछ की, तो उन्होंने बताया कि कई वर्षों से किसी मनुष्य को वहाँ रहने का साहस न हुआ था, क्योंकि उसमें भूतों का ठिकाना माना जाता था। यद्यपि मेरे मित्र ने, उस घर में उत्पन्न होकर भी, जीवन में पर्याप्त उन्नति कर ली थी, तो भी दूसरे लोगों के लिए वह घर अनिष्टकारी ही सिद्ध हुआ था। उसके स्वामी को एक शाप मिला हुआ था, जिसके प्रभाव से उसका इकलौता बेटा मर गया था और उसका आर्थिक सर्वनाश हो गया था। उस व्यक्ति के महान् अनिष्ट का विचार करके और उस टूटे-फूटे घर को देखकर हमें बहुत दुःख हुआ।

हमारा कोई पूर्व निश्चित प्रोग्राम न था, अतः हमने एक मन्दिर को देखने की ठानी। वह दो-तीन मील की दूरी पर एक पहाड़ी की चोटी पर था। उस मन्दिर की ओर जाने वाला तंग रास्ता मानो पहाड़ी की परिक्रमा कर रहा था, और कई स्थानों में चढ़ाई बिल्कुल सीधी थी। सूर्य का तेज अतीव तीक्ष्ण था और मार्ग के आसपास कोई वृक्ष न थे। हमें काफी कष्ट उठाना पड़ा। जब कभी हमें कोई छायादार वृक्ष दीख पड़ता, हमारी जान में जान आ जाती। लगभग दो घंटे की कठिन यात्रा के बाद हम मन्दिर में जा पहुँचे। वह हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध देवता का मन्दिर था, जोकि एक हरी-हरी घास वाली छोटी-सी समतल भूमि पर बना हुआ था। उसमें व जिस पगडण्डी से हम वहाँ पहुँचे थे, आकाश-पाताल का अन्तर था। वहाँ सभी ओर छायादार वृक्ष थे और कम से कम चार चश्मे थे, जिनके जल को पवित्र

माना जाता था। लोग वहाँ केवल इसलिए स्नान नहीं करते थे कि उस जल का कुछ स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्त्व था, परन्तु इसलिए भी कि उसका प्रभाव अतीव पवित्र माना जाता था। वह स्थान मुझे इतना अच्छा लगा कि मैंने यह निश्चय कर लिया कि मैं अपने काम-धन्धे से रिटायर होकर वहीं डेरा डाल लूँगा। वहां मुझे कुछ ऐसी शान्ति का भान हुआ, जैसी कि सदाचारी लोग स्वर्ग में पाने की आशा रखते हैं। मैंने अपने मन में सोचा कि पहाड़ी की चोटी तक की यह कठिन यात्रा भी तो हमारे जीवन के समान ही सुनसान व भयानक है, और इसकी समाप्ति पर ही शान्ति मिल सकती है।

मैं अभी उस दृश्य को देख-देखकर मुग्ध हो ही रहा था कि एक हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले बूढ़े सज्जन ने आगे बढ़कर हमारा स्वागत किया। इसमें सन्देह नहीं कि वह मन्दिर का पुजारी था, यद्यपि उसमें त्याग व तपस्या का कोई चिन्ह न था। उसका शरीर खूब पला हुआ था, और उसके आलसी स्वभाव के कारण उसकी देह पर खुब चर्बी चढ़ रही थी। अपनी जवानी में वह अवश्य ही बहुत सुन्दर रहा होगा, क्योंकि उसके मुख पर अब भी रमणीयता व स्वच्छता के चिन्ह विद्यमान थे। परन्तु उसके होंठों से वासना टपकती थी, और आँखों से लोभ। इतना होने पर भी, वह इतना दियानतदार था कि उसने हमारे सामने धर्मात्मापन का कोई ढोंग न रचा, और एक संसारी व्यक्ति के समान ही व्यवहार किया। उसने शीघ्र ही मेरे मित्र को पहचान लिया और उनके बचपन की कई घटनाएँ बतलाई। उसकी बातचीत से यह स्पष्ट था कि उसकी स्मरणशक्ति बहुत अच्छी है, और उसमें हास्यरस की भी अच्छा पुट है। उसके साथ कुछ देर वार्तालाप करने से मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि वह एक बहुत अच्छा सराय का ठेकेदार बन सकता था, जिसका वर्णन करने में 'चासर' को खूब मजा आता। यह उसके स्वभाव का मानवतापूर्ण पक्ष था, जिससे मुझे यह ख्याल आया कि चाहे कुछ भी हो, यह बुरा आदमी नहीं है। कुछ देर के बाद ही मैंने देखा कि वह भक्तों के एक समुदाय के साथ उनकी लाई हुई भेंट के सम्बन्ध में झगड़ा कर रहा था। यह स्पष्ट था कि उसके विचार में वह भेंट थोड़ी व अपर्याप्त थी, और वह उनसे कुछ अधिक हथियाने का यत्न कर रहा था।

वह यह काम कोमलता से न कर रहा था, वरन् एक ऐसे ढंग से जिससे अनुचित अभिमान व घमण्ड प्रकट होता था। वह देवताओं के लिए भेंट स्वीकार करनेवाला पुजारी होने के स्थान पर अनुचित कर वसूल करनेवाला अत्याचारी शासक प्रतीक होता था। उसके इस व्यवहार से मेरे वहाँ शांति-लाभ के सभी स्वप्न तितर-बितर हो गए। वह स्थान तो सचमुच ही सर्व-श्रेष्ठ था, परन्तु मन्दिर के इस अधिकारी ने मेरा वहाँ रहना असम्भव कर दिया। इस प्रकार मेरा यह भ्रम दूर हो गया।

अपने जीवन भर मैं एक रेस्ट हाउस (विश्राम-गृह) की खोज में लगा रहा हूँ। मै इस शब्द का प्रयोग उस अर्थ में नहीं कर रहा हूँ जिसमें कि पी० डब्ल्यू० डी० अथवा जंगलात के लोग करते हैं। केवल एक स्थान ही ऐसा था जोकि मेरी कल्पना के विश्राम-गृह से मेल खाता था, परन्तु, जैसा मैं पहले ही कह चुका हूँ, वह भ्रम देर तक न टिक सका। मेरी खोज फिर भी जारी ही रहेगी, यद्यपि मै समझता हूँ कि मै उस स्थान के समान, जिसका वर्णन यीट्स ने किया है, कोई ठिकाना न पा सकूँगा। वह ठिकाना कल्पना जगत् की वस्तु था, और मैं वास्तव में एक शान्तिमय स्थान पाना चाहता हूँ। सम्भव है कि पूर्ण प्रयत्न करने पर भी ऐसी कोई विश्रामस्थली मुझे न मिले, फिर भी मैं इस विषय में अपने जाग्रत स्वप्नों को त्यागने के लिए उद्यत नहीं हूँ। मनोवैज्ञानिक चाहे कुछ क्यों न कहें, मै इस बहुमूल्य व निर्दोष आनन्द-स्रोत से किनारा करने के लिए तैयार नहीं हूँ।

स्वल्पभार यात्रा में सुखकर | ७

मैं एक रेलवे स्टेशन के रिफ्रेशमेण्ट रूम में चाय पीने गया। कमरा खासा बड़ा था, और उसमें प्रकाश पर्याप्त मात्रा में था। उसमें मेजों व कुर्सियों का जमघट न था, बल्कि चलने-फिरने के लिए पर्याप्त स्थान था। उसकी दीवारों पर कुछ समय पहले ही सफेदी की गई थी, और वे साफ-सुथरी दिखाई पड़ती थीं। वास्तव में वह एक सुखप्रद स्थान था। वहाँ आजकल के एक अच्छे होटल का-सा आराम तो न था, परन्तु वह स्थान खासा सुखदायक था। वहाँ मुझे आराम प्रतीत हुआ, और सुख का साँस लेकर मैं एक कुर्सी पर बैठ गया। मुझे इस सुख की अतीव आवश्यकता थी, क्योंकि जिस गाड़ी से मुझे जाना था वह कुछ घंटे लेट थी, और मुझे यह न सूझ रहा था कि मैं इस अनचाहे अवकाश का क्या करूँ। मुझे वेटिंगरूम में एक आराम कुर्सी पर लेटना अधिक पसन्द था, परन्तु वह ठसाठस भरा हुआ था। वहाँ भाँति-भाँति के लोगों का जमघट-सा था, और वे खूब शोर मचा रहे थे। इतने पर ही बस न थी; बहुत-से लोग भीतर-बाहर आ-जा रहे थे। प्रति क्षण कोई न कोई व्यक्ति दरवाजे को जोर से खोलता अथवा बन्द करता था, जिससे चित्त को बहुत अशान्ति होती थी। कुछ लोगों की बातचीत का प्रवाह निरन्तर चल रहा था। एक छोटी-सी लड़की अपने नन्हे भाई को लिए बैठी थी—उसके लिए तो वेटिंग रूम मानो उनके घर का बाल मन्दिर ही था। वह बारी-बारी से बच्चे को खिझाती और बहलाती थी। जब बच्चा चिल्लाने लगता तो वह उसे चुप कराने का यत्न करती थी, परन्तु वह उसे देर तक चुप न रहने देती थी। वह उसे फिर छेड़ देती, और वह रोने-चिल्लाने लगता। इस प्रकार वेटिंग रूम नरक का सजीव रूप धारण कर रहा था।

इधर रिफ्रेशमेण्ट रूम में शान्ति थी। वहाँ केवल दो मेजें थीं और उनमें से एक खाली थी। दूसरी के पास एक सुघड़ वेशधारी भद्र पुरुष बैठे

बड़े सलीके से चाय पी रहे थे। चाय की चुसकी लेते-लेते वह बीच में बड़े फैशनेबल ढंग से सिगरेट का कश लगाते थे। वह एक शान्तिप्रिय, सुशिक्षित व्यक्ति प्रतीत होते थे, जिन्हें चाय व सिगरेट दोनों से प्रेम था, और जो दोनों के सेवन में अत्यन्त आनन्द अनुभव करते थे। बैरा, जो कि बड़ी आयु का था, अपने काम में निपुण प्रतीत होता था। उसने एक स्वच्छ कोट व पाजामा पहन रखा था। उसकी पगड़ी, जो कि उसके बड़े सिर के लिए बहुत छो.ी थी, बड़ी सावधानी से बांधी गई थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसे अपने काम में बहुत रुचि है, और कोई भी व्यक्ति स्वतः उसकी ओर आकर्षित हुए बिना न रह सकता था। इस बात को दूसरे ढंग से कहा जाए तो शायद अच्छा रहे। अन्य बैरों की अपेक्षा वह अपने ग्राहकों के प्रति अधिक दयालु था। मैंने तो उसे देखते ही ऐसा अनुभव किया कि मानो उसके और मेरे बीच में एक सहानुभूति की शृङ्खला विद्यमान है। वह स्नेह-बंधन और भी दृढ़ हो गया, उस समय, जबकि मैंने उसे चाय का आर्डर दिया, और उसने अत्यन्त कोमल स्वर में पूछा, "क्या आप खाने के लिए भी कुछ लेंगे ?" मेरी कुछ भी खाने की इच्छा न थी, परन्तु यह जताने के लिए कि मैं उसके मित्रभाव से प्रभावित हुआ हूँ, मैंने कहा, "हाँ, कुछ खाने के लिए भी ले आना।" उसने कुछ ऐसे पदार्थों का नाम लिया, जो कि वहाँ मिल सकते थे तो मैंने उनमें से एक को चुन लिया। जब वह उन वस्तुओं की गिनती कर रहा था, तब भी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह यह काम एक मशीन के समान नहीं कर रहा। मैंने कई ऐसे बैरे देखे हैं, जिन्हें कि समस्त खाद्य पदार्थों की सूची स्मरण होती है, और वे उसे इतनी ही सुगमता से दुहरा देते हैं, जैसे कि एक सिखाया हुआ गवाह कचहरी में अपनी साक्षी के बयान को दुहराता है। इसके विपरीत, उसने तो उन पदार्थों के नाम इस प्रकार लिए कि मानो उनमें से प्रत्येक की पृथक सत्ता और स्वाद हो। ऐसा प्रतीत होता था कि वह मुझे यह बताना चाहता है कि मैं उनके परस्पर भेद को न भुलाऊँ। ऐसा करने में उसका यह अभिप्राय था कि मैं अपनी रुचि के अनुसार किन्हीं पदार्थों को मँगवा लूँ। वह एक प्रकार से मेरी विवेकशील स्वाद-प्रवृत्ति को एक सूक्ष्म प्रेरणा देना चाहता था और इस सुझाव से मुझे रिझाना चाहता था कि मुझमें सर्वोत्तम पदार्थ को चुनने की सामर्थ्य है। खैर,

मैंने उसे आर्डर दे दिया, और इससे उसे हर्ष हुआ।

जब बैरा चल गया, तो मैंने कमरे की दीवारों पर दृष्टि डाली। वहाँ कई विज्ञापन लगे हुए थे—कुछ रंगदार विज्ञापन मुझे यह आदेश कर रहे थे कि मैं किसी न किसी स्वास्थ्यवर्धक पहाड़ी स्थान पर जाऊँ और भारत की प्राकृतिक शोभा का आनन्द उठाऊँ। मैंने, कुछ घृणा के-से भाव से, अपनी दृष्टि उधर से हटा ली, और एक दबी जबान से कहा, "अभी नहीं फिर कभी सही।" मुझे रेल के अधिकारियों की समझ पर बहुत आश्चर्य हुआ जो कि इन दिनों भी ऐसे विज्ञापन प्रदर्शित करते है, जब कि वे इस प्रकार की यात्रा को निरुत्साहित करना चाहते हैं। और किसी अवसर पर मैं शायद उन्हें बुरा-भला कहने लगता, परन्तु इस समय मेरी मनोवृत्ति सभी पदार्थों के प्रति उदारतापूर्ण थी। इसमें सन्देह न था कि ये विज्ञापन पुराने हो चुके थे, परन्तु मैंने उन्हें उन शुभ दिनों के स्मारकों के रूप में देखा जब कि लोग यात्रा की भावना से ही यात्रा करते थे। मैंने मन ही मन उस आनन्दमय समय की पुनरावृत्ति के लिए प्रार्थना की। मैंने तो इस बात का भी संकल्प कर लिया, कि जब रेल का सफर फिर से कुछ अधिक सुखप्रद हो जाएगा, तो मैं इनमें से कुछ स्थानों का चक्कर लगा आऊँगा।

अचानक मेरी दृष्टि एक ऐसे विज्ञापन पर पड़ी जिसका शीर्षक था—'स्वल्पभार यात्रा में सुखकर'। आदेशसूचक क्रिया मनुष्य जाति के लिए एक विशेष आकर्षण रखती है, और इस आदेश का मुझ पर अच्छा प्रभाव हुआ। इसके शब्द-लालित्य तथा संक्षिप्त वर्ण-शैली पर मैं मुग्ध-सा हो गया। मैं इसे ध्यानपूर्वक देखने लगा। इस विज्ञापन में जो दो व्यक्ति दिखाए गए थे, उनके प्रति मेरा हृदय आकर्षित हुआ। वे दोनों ही युवावस्था में थे, और उनमें यौवन के सभी श्रेष्ठ गुण विद्यमान थे। सौन्दर्य तथा साहस के भाव उनके अंग-अंग से प्रकट हो रहे थे। मैंने अपने मन में सोचा, यह ग्रामीण सुन्दरी व इसका प्रियतम कौन है ? क्या ये उस ढंग के प्रेमी हैं, जोकि समाज व उसके विधि-विधानों के विरुद्ध विद्रोह करते हैं, और उनकी ओर से सर्वथा मुख मोड़ लेते हैं ? उनकी प्रगतिशील यात्रा एक प्रकार से संसार के प्रति चुनौती थी। मानो वे कह रहे हों, 'यह लो, हम जाते हैं। हमारा इस संसार से कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि यह हमारी सुख-शान्ति का शत्रु है। हम

अपना एक नया संसार बना लेंगे और उसमें सुख-शान्ति के साथ रहेंगे। वहाँ अपने सगे-सम्बन्धियों की देख-रेख व समाज के अनुचित हस्तक्षेप से हमारा छुटकारा हो जाएगा। अब हमारा जीवन सर्वथा स्वतन्त्र, बन्धन-रहित व झूठी लज्जा से शून्य होगा।' सारांश यह कि वे उन यात्रियों के समान प्रतीत होते थे, जो कि अपने बहुत ही कम सामान के साथ अपने एक अदूरस्थ लक्ष्य की ओर जा रहे होते हैं।

परन्तु चित्रकार का अभिप्राय यह सब कुछ जतलाना न था। वह तो केवल यह दिखाना चाहता था कि एक व्यक्ति, जो कि थोड़ा-सा सामान लेकर चलता है किस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक रेल की यात्रा की कठिनाइयों का सामना कर सकता है। चित्र में दिखाई गई जोड़ी मानो आनन्दपूर्ण स्वतन्त्रता के साथ आगे बढ़ रही थी। उनके कदम धीरे-धीरे बढ़ते थे, और उनके हृदय में हर्ष का भाव था। यह स्पष्ट था कि वे सफर की चिन्ता से घबरा नहीं रहे थे, और गाड़ियों की भीड़-भाड़ से भयभीत नहीं हो रहे थे। उनके लिए यह यात्रा एक मनोरंजक भ्रमण के समान थी, न कि एक कठिन कार्य। क्या ही अच्छा होता कि विज्ञापन के उस भद्दे व्याख्यात्मक आदेश के स्थान में उमर खय्याम[1] की एक रुबाई दी होती! उनके सामान की कमी ही केवल-मात्र उनकी भावी प्रसन्नता का कारण न हो सकती थी।

फिर भी, थोड़े सामान के साथ यात्रा करने में कुछ विशेषता है। कभी-कभी ऐसे साधुओं से मेल होता है, जो कि भारत के अतीव दुर्गम स्थानों की यात्रा कर चुके होते हैं, और इस बात पर आश्चर्य होता है कि ये लोग बिना किसी साधन-सामग्री के किस प्रकार ऐसा करने में समर्थ होते हैं। एक बार एक स्वास्थ्यवर्धक स्थान पर मेरी एक साधु से भेंट हुई। उसके वस्त्र जीर्ण-शीर्ण थे। वह नंगे पैरों चल रहा था, और उसके हाथ में एक पतला-सा दण्ड था। उसका शरीर लचकदार व गठा हुआ था, और उसके बाल उलझे हुए पर घुँघराले थे। उसकी आँखों में प्रसन्नता की झलक थी। वह प्रसन्नता के स्वर में बात कर रहा था। उसने मुझसे कहा, "रामेश्वरम् हो

---

१. उमर खय्याम : ईरान का एक प्रसिद्ध गणितज्ञ, ज्योतिषी व कवि। अपनी रुबाइयों के लिए प्रसिद्ध है।

आया हूँ और अब अमरनाथ की गुफा—जोकि काश्मीर की घाटी में है—की यात्रा पर जा रहा हूं।" उसने मुझसे कुछ पैसे मांगे, परन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि वह भिक्षा के रूप में नहीं माँग रहा। वह केवल इसलिए माँग रहा था कि उसे कुछ धन की आवश्यकता थी, और वह एक ऐसे व्यक्ति से माँग रहा था जो कि उसकी आवश्यकता को पूरा किए बिना न रह सकता था। मैंने प्रसन्न चित्त उसे कुछ धन दिया, और वह बिना किसी प्रकार का आशीर्वाद दिए (जैसा कि साधु लोग प्रायः करते हैं) चलता बना। जब वह चला गया तो मैं उसके साहस पर मुग्ध हुए बिना न रह सका। उसके पास न तो कोई वस्त्र थे, न ही कोई बिछौना था और उसकी जेब में एक पैसा भी न था; फिर भी वह बड़े निश्चिन्त भाव से सड़कों पर सैर करता फिरता था। मैं इस बात का पता न लगा सका कि वह जन्म से ही आवारा-गर्द था अथवा संन्यासी। उसकी भ्रमण के प्रति प्रबल रुचि पहली बात को दर्शाती थी, और संग्रह के प्रति विरक्ति दूसरी बात का प्रमाण थी। अस्तु, वह एक विलक्षण व्यक्ति था, और इस संकेत-वाक्य को भली प्रकार चरितार्थ करता था कि वह उस विज्ञापन के लिए अधिक उपयुक्त विषय हो सकता था।

इसके विपरीत, कई ऐसे व्यक्ति हैं, जो कि रेल के अधिकारियों के बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी, थोड़ा सामान लेकर यात्रा नहीं कर सकते। मैं एक ऐसे भद्र पुरुष को जानता हूँ जो कि अपना सारा साज-सामान लिए बिना एक सप्ताह के लिए भी किसी हिल स्टेशन पर नहीं जा सकता। उन औषधियों की संख्या से, जो कि वह अपने साथ ले जाता है, दिल दहल जाता है, और जितने वस्त्र वह अपने साथ रख लेता है उस पर किसी को विश्वास नहीं हो सकता। उसका सूटकेस बहुत बड़े साइज का है। मैंने तो उसे एक बार यह सुझाव दिया था कि उचित परिवर्तन करने से उसमें एक छोटे कद का व्यक्ति भली भाँति समा सकता है। वह उन नगों को देख-देखकर प्रसन्न होता है, जिन्हें कि वह अपने साथ रखता है; और उसके नौकरों को उनकी रखवाली करने के लिए बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। परन्तु प्रारम्भिक संख्या की तो कोई बात ही नहीं, क्योंकि वह तो थोड़ा-सा बहाना मिलते ही इसमें वृद्धि कर लेता है। अपनी यात्रा में वह

ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों समाचारपत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों व अन्य वस्तुओं की संख्या में वृद्धि होती जाती है। लक्ष्य स्थान तक पहुँचने तक उसके सामान की संख्या गिनती से बाहर हो जाती है। मुझे इस बात का आश्चर्य है कि कोई चित्रकार, उन लोगों को चेतावनी देने के लिए जो कि अपनी संग्रह-वृत्ति पर अभिमान करते हैं, उसका चित्र क्यों नहीं बनाता।

मेरी यह धारणा है कि यह सब कुछ मनुष्य की मानसिक अवस्था पर निर्भर है। कई व्यक्ति जन्मकाल से ही संग्रहवृत्ति वाले होते हैं, और कई सर्वथा संग्रह-वृत्ति के विरुद्ध। यह सिद्धान्त न केवल व्यक्तियों अपितु जातियों के सम्बन्ध में भी सत्य है। उदाहरण के लिए चीनी लोग, व्यक्तिगत तथा जातीय रूप में भी, संग्रह-वृत्ति के प्रतिकूल होते हैं और पश्चिम के लोग प्रायः जन्म से ही संग्रह में प्रवृत्त होते हैं और उसमें वृद्धि करते जाते हैं। शायद औसत दर्जे के चीनी से बढ़कर कोई भी व्यक्ति इस सांकेतिक निर्देश को चरितार्थ नहीं कर सकता। वह कम से कम सामान और बहुत थोड़े-से धन को लेकर लम्बी यात्रा पर निकल पड़ता है, परन्तु फिर भी उसे अधिक से अधिक आनन्द की प्राप्ति होती है। और कई ऐसे व्यक्ति हैं जो कि मेरे उस मित्र के समान, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, अपने आपको अधिक से अधिक वस्तुओं के बन्धन में डाले बिना अपने घर से एक कदम भी बाहर नहीं जा सकते। कुछ जातियों की भी यही दशा है। उनकी पीठ इतनी बड़ी होती है कि उन्हें अपना ही बोझ उठाने से सन्तोष नहीं होता, वे दूसरे लोगों का बोझ उठाने का यत्न करना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

हाँ तो, समरकालीन परिस्थिति के टल जाने पर भी थोड़े सामान के साथ यात्रा करने में अनेक लाभ हैं। उदाहरणार्थ, मैंने देखा है कि मेरे कुछ मित्रों को इस बात का दुःख है कि वे यात्रा पर जाते समय अपने साथ बहुत अधिक धन क्यों ले गए। एक बार मेरा एक मित्र अपने अवकाश का कुछ भाग मेरे पास बिताने के लिए चला आ रहा था। उसे कुछ वस्तुएँ खरीदनी थीं, सो उसने पर्याप्त धन अपने साथ ले लिया। वह टिकट लेकर गाड़ी में सवार हो गया। आधे घण्टे के अन्दर ही उसे पता चल गया कि उसका सब धन जाता रहा है। किसी गँठकतरे ने उसका सब रुपया हथिया लिया था। अब उसे विवश होकर अपने घर को लौटना पड़ा, और अपनी यात्रा को

चालू रखने का साहस वह न कर सका। मेरे एक और मित्र को भी, जो कि एक प्रसिद्ध ज्योतिषी तथा मनोवैज्ञानिक थे, एक ऐसी ही घटना का सामना करना पड़ा। वह एक मकान बनवाने के लिए ३००० रुपया लेकर जा रहे थे। उनकी प्रसन्नता का पार न था, क्योंकि वह अपने जीवन की एक उत्कट अभिलाषा को पूर्ण करने जा रहे थे। परन्तु उन्हें कुछ समय के पश्चात् ही यह पता चला कि उनका सब रुपया चला गया है। उनके अनजाने में ही किसी चतुर गँठकतरे ने उनके धन पर हाथ साफ कर लिया था। इन दोनों मित्रों ने मुझे कई बार बतलाया है कि गँठकतरे इस सांकेतिक शब्द के सम्बन्ध में अपने ही विचार रखते हैं। इतना ही नहीं, वे उन विचारों को क्रियात्मक रूप देकर दूसरों को भली प्रकार शिक्षा भी देते हैं।

अस्तु, हमें इस आदर्श वाक्य का तिरस्कार न करना चाहिए, यद्यपि जो विज्ञापन मैंने देखा उससे मैं इसके प्रति विशेष रूप में कोई अच्छी धारणा न बना सका। वह मनोवृत्ति, जो इसके द्वारा चरितार्थ होती है, वास्तव में सराहने योग्य है। उससे हम एक जीवन-तत्व को पा सकते हैं। मुझे यह पता चला है कि आर० एल० स्टीवेन्सन[1] इस जीवन-दर्शन को क्रियात्मक रूप देते थे। उनकी यह धारणा थी कि हमें न केवल रेल की यात्रा में थोड़ा सामान लेकर चलना चाहिए, वरन् जीवन की अतीव कठिन यात्रा में भी ऐसा करना चाहिए। कोई यह नहीं कह सकता कि उन्हें इस विचारधारा के लिए पश्चात्ताप करना पड़ा। तो, रेल के अधिकारी, हमें इस मनोवृत्ति को अपनाने की प्रेरणा देकर, एक अच्छा ही काम कर रहे हैं। उस दशा में रेल विभाग न केवल एक जनता के लिए लाभदायक संस्था होगी, बल्कि एक शिक्षक का भी काम करेगी।

---

१. आर० एल० स्टीवेन्सन (१८५०–९४ ई०) : स्काटलैंड के प्रसिद्ध निबन्ध-लेखक, उपन्यासकार व गल्प-निर्माता। प्रसिद्ध उपन्यास—'ट्रेज़र आईलैंड', 'किडनैप्ड' आदि। गल्प—'डाक्टर जैकिल एण्ड मिस्टर हाईड' इत्यादि।

पीटर चेनी* पढ़ो | ८

मैं एक स्कूल के विद्यार्थी के समान अपनी बगल में एक पुस्तक दबाए जा रहा था। मुझे उसका नाम याद है, परन्तु मैं तुम्हें बतलाना नहीं चाहता। मैं उस पुस्तक को अभी-अभी एक दुकान से लेकर चला आ रहा था। आजकल पुस्तकें इतनी कम मिलती हैं (वे पुस्तकें, जिन्हें मैं पसन्द करता हूँ) कि एक भी नई पुस्तक ख़रीदने से मुझे असीम गर्व व प्रसन्नता का अनुभव होता है। शायद अभिमान का यही गुप्तभाव मुझे उस पुस्तक को इस ढंग से उठाए फिरने की प्रेरणा कर रहा था। साधारण अवस्था में मैं उसे हाथ में लेकर चलता, परन्तु मैंने वैसा न किया; क्योंकि मेरा उसके प्रति ऐसा ही भाव था जैसा कि एक व्यक्ति का उस गुप्त कोष के प्रति होता है, जिसे कि वह दूसरों के साथ बाँटकर भोगना नहीं चाहता। इसके अतिरिक्त, आजकल अपनी पुस्तकों का प्रदर्शन करना भय से खाली नहीं है। पुस्तकों की संख्या इतनी कम है और उत्साही पाठक इतने अधिक हैं कि उनमें से कोई भी किसी पुस्तक को छीन सकता है, और वह भी उसे उसके न्यायोचित स्वामी को लौटाने की इच्छा किए बिना ही। इस प्रकार के लुटेरों की संख्या आजकल इतनी अधिक है कि कोई भी व्यक्ति जनता के सामने अपनी पुस्तकों का प्रदर्शन करने में घबराहट अनुभव किए बिना नहीं रह सकता। कोई न कोई व्यक्ति तुम्हारे प्रतिवाद की परवाह न करके तुमसे एक पुस्तक छीन लेगा और जब तुम अगली बार उसे लौटाने के लिए कहोगे, तो बड़े

* पीटर चेनी : एक साधारण श्रेणी का अंग्रेज़ उपन्यासकार। इसके अधिकांश उपन्यास रोमाञ्चकारी घटनाओं से भरपूर होते हैं, उनमें चरित्र-चित्रण व गम्भीर भावों का प्रायः अभाव दीख पड़ता है।

विनीत स्वर में कहेगा, "मैंने वह पुस्तक अपने एक मित्र को दी थी, जिसका नाम अब मुझे याद नहीं।"

मैं एक पुस्तक को इसी प्रकार लिए जा रहा था कि मुझे एक मित्र मिला। मैं सदा यही सोचता हूं कि वह संसार के थोड़े-से भाग्यवान् व्यक्तियों में से है। वह उन लोगों में से है जो कि ऐसा प्रतीत होता है, बिना कुछ किए-कराए ही अपने जीवन में सब कुछ पा लेते हैं। कई बार मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि वह संसार में उन्नति करने के लिए आवश्यक उपायों को अपनाये बिना ही, कैसे चोटी तक पहुंच गया। कई लोग इसका कारण उसकी कुलीनता को बताते हैं। वे कहते हैं कि वह सोने के पालने में झूला है। परन्तु इस बात से उसकी सफलता की पूर्णतया व्याख्या नहीं हो सकती, क्योंकि मैंने देखा है कि कई व्यक्ति, जो कि वैसी ही परिस्थिति में उत्पन्न हुए थे, अपने जीवन को सफल नहीं बना सके। कइयों के मत में उसकी सफलता का रहस्य उसकी विदेशों में पाई हुई शिक्षा है। इसका लाभ अवश्य है, परन्तु बहुत कम ऐसे लोग हैं, जिन्होंने इसका सुन्दर ढंग से उपयोग किया है। कइयों का कहना है कि वह 'खिलाड़ीपन' से जीवन में इतनी उन्नति कर गया है; परन्तु यह युक्ति भी संतोषजनक नहीं है, क्योंकि मैंने देखा है कि हमारे खिलाड़ियों में से बहुत-से चार दिन के लिए अपनी चमक-दमक दिखाते हैं, और फिर बस—उनका नाम तक सुनने में नहीं आता। कुछ लोगों के विचार में उसकी सफलता का कारण सामाजिक मेल-मिलाप है; परन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह मिलनसारी, जिसकी इतनी प्रशंसा की जाती है, एक पुरुष सम्बन्धी गुण होने की अपेक्षा, केवल एक स्त्री सुलभ गुण है। चाहे कुछ भी हो, उसने अच्छी उन्नति की है। कुछ कठिन परिश्रम किए बिना ही उसने ऐसी शोभा पा ली है कि दूसरे लोग उससे ईर्ष्या कर सकते हैं। मेरे लिए तो वह सर्वत्र इस संसार के रहस्यों में से एक रहा है। कुछ दिन हुए उसने अचानक एक बात कही, जिससे यह रहस्य और भी गंभीर हो गया है। उसने अपनी स्वाभाविक लापरवाही से कहा, "क्यों भई, क्या कर रहे हो?" उसने मानो सहज स्वभाव से ही यह प्रश्न कर दिया और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कहने लगा, "तुम तो सदा गम्भीर साहित्य ही पढ़ते रहते हो। ऐसी पुस्तकें किसी काम की नहीं

होतीं। पीटर चेनी पढ़ो। मेरे लड़के कुछ पढ़ना नहीं चाहते थे—इससे मुझे दुःख होता था। मैंने उन्हें पीटर चेनी पढ़ने को दिया और वे अब उस पर जी-जान से लट्टू हो रहे हैं। पीटर चेनी सचमुच ही विलक्षण है—उसे अवश्य पढ़ो।" उसने मुझे एक लम्बा-चौड़ा स्वगत भाषण सुना दिया, और इससे पहले कि मैं उससे कोई और प्रश्न कर सकूँ, वह वहाँ से चलता बना।

मेरा उसके साथ मिलाप क्षणिक, आकस्मिक व निराशाजनक था, परन्तु इससे मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मुझे कभी यह सन्देह न हो सकता था कि वह भलामानस भी किसी बात में रुचि रख सकता है, परन्तु उसे पीटर चेनी से विशेष प्रेम हो गया था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह उसके लिए एक धर्म-प्रचारक का-सा उत्साह रखता है, और दूसरों को अपना अनुयायी बनाना चाहता है। वह मेरे जैसे व्यक्ति को भी सुधारना चाहता था। उसने वास्तव में मुझे कहा, "अब तक तुम उल्टी-पुल्टी किताबें ही पढ़ते रहे हो। मैं देखता हूँ कि तुम्हें पढ़ाई से विशेष लाभ नहीं हुआ है। मैंने एक नए लेखक से तुम्हारा परिचय कराया है—उसे पढ़ने से तुम्हें बहुत लाभ होगा। वह तुम्हारी आँखें खोल देगा। तुम सभी बातों को एक नये दृष्टिकोण से देख सकोगे, और वह तुम्हारी कल्पनाशक्ति को बढ़ा देगा। अपने पुराने प्रेम-भाजन लेखकों पर समय नष्ट मत करो। इस लेखक से घनिष्ठता बढ़ाओ—इसी में तुम्हारा कल्याण है।"

उसका यह संदेश कुछ देर तक मेरे कानों में गूँजता रहा—इससे मेरा चित्त बहुत खिन्न हुआ। इस अशान्ति से छुटकारा पाने के लिए, मैं अपने नगर की सबसे बड़ी पुस्तकों की दुकान पर जा पहुँचा और उसके भारी-भरकम शरीर वाले, अधेड़ उम्र के समृद्ध स्वामी से बोला, "तुम्हारे पास पीटर चेनी है क्या ?" उसने अविश्वास भरी दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा, "पीटर चेनी कौन है ? हमने तो उसका नाम भी नहीं सुना। वह कोई साधारण उपन्यास लेखक होगा। आप तो जानते ही हैं कि हम ऐसी पुस्तकें नहीं रखते।" उसके स्वर से यह प्रकट होता था कि मैं उसकी दृष्टि में गिर गया हूँ—वह मुझसे अधिक अच्छी रुचि की आशा रखता था। परन्तु मैं उसकी इस मीठी झाड़ से न घबराया और एक ऐसी दुकान की ओर चल

पड़ा, जिसका स्वामी एक ऐसा व्यक्ति था जो कि अपने ग्राहकों की रुचि की अपेक्षा उनकी जेब की ओर अधिक ध्यान देता था। मुझे उससे अधिक सहानुभूति व सहायता मिलने की आशा थी; परन्तु वह भी मेरे प्रश्न से घबरा गया। फिर भी उसने मेरी सहायता करने का यत्न किया। उसने अपने सेल्समैनों से पूछा, "क्यों, हमारे यहाँ पीटर चेनी की कोई पुस्तक है क्या?" उन्होंने सिर हिलाकर इस बात की सूचना दी कि उन्होंने तो इस व्यक्ति का नाम भी न सुना था। अस्तु, मैंने तो अब अपनी खोज को चालू रखने का विचार कर लिया था। मेरे उस मित्र ने जिसके सम्बन्ध में मेरी यह धारणा थी कि वह किसी बात में भी मुझे प्रवाहित नहीं कर सकता, एक चमत्कार कर दिखाया था—उसने मुझे पीटर चेनी की खोज में प्रेरित किया था।

अब केवल एक और दुकान रह गई थी और मैंने वहाँ भी खोज करने का निश्चय कर लिया। वहाँ पहुँचने में मुझे कोई देर न लगी। वहाँ मैंने एक मँझले कद के व्यक्ति को देखा, जो कि बहुत चुपचाप, मीठा बोलनेवाला और धीमी चाल से चलने वाला था। उसने बड़ी शिष्टता से मेरा स्वागत किया और मुझे वे सभी पुस्तकें दिखाई, जो कि कुछ समय पहले ही उसके यहाँ आई थीं। वह मुझे साथ के कमरे में भी ले गया, जहाँ कि नई आई हुई पुस्तकों के ढेर लगे हुए थे। उसने कहा, "आप इनमें जो पुस्तक चाहें निकाल लें। उसे क्या पता था कि उस समय मेरी रुचि उनमें से किसी पुस्तक में भी न थी। पीटर चेनी ने मेरे दिल में घर कर लिया था। मैंने उसे ढूँढ़ निकालने पर कमर कस ली थी। परन्तु वह भी, दूसरों के समान उस लेखक से अपरिचित था। वह एक सभ्य व्यक्ति था, अतः मेरे प्रश्न पर आश्चर्य प्रकट किए बिना, उसने उसके स्थान पर और कुछ पुस्तकों के नाम लिए। उसे यह ज्ञान न था कि मुझे तो पीटर चेनी की पुस्तकें ही चाहिए थीं, न कि उनकी स्थानापन्न कोई और पुस्तकें। पीटर चेनी के लिए मेरे हृदय में इतना उत्साह था कि मेरे लिए वह सच्चा सोना था और बाकी सब लेखक नकली गहने। परन्तु यहाँ भी मुझे निराशा का मुँह देखना पड़ा। बचपन में मैंने एक कविता पढ़ी थी, 'पुनः करो उद्योग'। मैंने इस आदेश पर चलने का निश्चय कर लिया। मुझे याद आया कि पिछले तीन-चार वर्षों में कुछ छोटी-मोटी दुकानें चल निकली थीं, जो कि मैगज़ीनों,

समाचार पत्रों, उपन्यासों, यौन साहित्य व पुरानी पुस्तकों का व्यापार जोर-शोर से करती थीं। मैंने यह निश्चय किया कि आवश्यकता हुई तो उन सबका दौरा कर आऊँगा। मैंने किया भी ऐसा ही, परन्तु मेरा प्रयत्न निष्फल ही रहा। पराजय व लज्जा के भावों के अधीन होकर, मैं ऐसी एक दुकान से धीरे-धीरे लौट ही रहा था कि उसके स्वामी ने, जो कि छोटे कद का आदमी था, मुझे पीछे से पुकारा, "ज़रा ठहरिए, मुझे याद हो आया है कि मैंने पीटर चेनी की कुछ पुस्तकें बेची थीं, परन्तु वे सभी पुरानी थीं। मेरा आदमी हर सोमवार को ऐसी पुरानी पुस्तकें खरीदने के लिए जाता है। वह अभी आने वाला है। शायद वह उन पुस्तकों में से, जो कि आपको चाहिएँ, एकाध लेता आवे।" मैं वहाँ कुछ देर के लिए ठहर गया। समय बिताने के लिए, मैंने उन पुस्तकों को देखना आरम्भ किया, जो कि वहां बेचने के लिए सजाई हुई थीं। उनमें से बहुत-सी कई हाथों में से गुजर चुकी थीं और गन्दी हो गई थीं, और ऐसी थीं कि उनका मैंने कभी नाम भी न सुना था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं पुस्तकों के एक अज्ञात देश में पहुँच गया हूँ। मैंने सोचा, 'पढ़ने वाले लोगों की रुचि कैसी भिन्न-भिन्न है।' उसी समय उसका आदमी पुस्तकों व मैगज़ीनों से लदा-फदा वहाँ आ पहुँचा, और मुझे यह जानकर बहुत निराशा हुई कि उनमें पीटर चेनी की कोई पुस्तक न थी।

मुझे शायद इस लेखक के सम्बन्ध में कालेजों अथवा प्रतिष्ठित क्लबों की लायब्रेरियों से पूछ-ताछ करनी चाहिए थी। परन्तु मेरा उत्साह अब क्षीण हो रहा था, और बार-बार की असफलता से मेरे हृदय में निराशा छा रही थी। शायद रेलवे बुकस्टाल पर जाने से मेरी कठिनाई दूर हो जाती, परन्तु मेरी इच्छा इस झगड़े को चालू रखने की न थी। मेरा विचार अब इस लेखक से परिचय पाने की आशा छोड़ देने का था। इसके अतिरिक्त, मेरी यह धारणा हो चली थी कि पीटर चेनी कोई प्रसिद्ध लेखक नहीं हो सकता। यदि यह कोई प्रतिभाशाली उपन्यासकार होता, तो मुझे अवश्य ही उसका पता चल जाता। यदि उसकी पुस्तकों की विशेष माँग होती, तो वे अवश्य ही इन दुकानों पर रखी जातीं। मेरे मित्र की रुचि शायद विचित्र थी, और उसने मुझ पर भी उसे ठूँसने का यत्न उस समय किया था जब कि मैं ऐसी बातों से शीघ्र ही प्रभावित हो सकता था। मैंने अपने मन में सोचा

कि पेटैन्ट दवाइयों के बेचने वाले अपनी वस्तुओं को इसी प्रकार बेचते हैं। वे उचित समय पर मनुष्य के मन में कामना का बीज बोते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि दुर्बलता के वशीभूत होकर वह उस वस्तु को खरीदने के लिए उद्यत हो जाता है, जिससे कि विज्ञापन का सम्बन्ध होता है। मेरी कुछ ऐसी ही बात थी। मैं एक नए लेखक से परिचय पाकर कुछ नई मानसिक उत्तेजना पाना चाहता था। मैं ऐसे विजेता के समान न था जो कि ज्ञान के नए क्षेत्रों को वश में करना चाहता है—मैं तो केवलमात्र एक नए साहित्यिक आहार से अपनी शिथिल हुई रुचि को उत्तेजित करना चाहता था।

मैंने अपनी खोज को प्रायः छोड़ ही दिया था कि अचानक मेरी दृष्टि एक चित्रमय साप्ताहिक पत्र के इस विज्ञापन पर पड़ी, 'अंधेरी गली : लेखक पीटर-चेनी—इस उपन्यास का सम्बन्ध युद्धकालीन ब्रिटेन से है, और जासूसी चालों को रद्द करने वाली परिस्थितियों की भयावहता पीटर चेनी की विलक्षण स्त्रियों (जिनमें सभी गुण होते हैं,), विशेष बलवान् पुरुषों और लन्दन के मध्यभाग में रहने वाले निष्ठुर नाजियों के लिए एक उचित पृष्ठभाग का काम देती है। सभी पात्र चेनी की स्त्रियों सम्बन्धी विशेष तड़क-भड़क व पुरुषों सम्बन्धी गम्भीर साहस से युक्त हैं। स्त्रियाँ, सदा के समान ही, सुन्दर वेशभूषा धारण करती हैं, शराब पीकर मस्त हो जाती हैं, प्रेम-व्यवहार में विशेष उमङ्ग नहीं दिखातीं, और केवल एक विलक्षण व्यक्ति के अतिरिक्त उन सबका व्यवहार घृणा उत्पन्न करने वाला होता है। उनमें से बहुत-सी देखने में देवताओं के समान होती हैं, परन्तु उनकी वाणी दानवों की-सी होती है। यह पीटर चेनी की सर्वोत्तम कृतियों में से नहीं है, और यह दूसरे उपन्यासों से छोटा है, परन्तु इसमें पीटर चेनी की पूरी रोचकता व रमणीयता पाई जाती है। यह उसके विशेष व्यक्तित्व को प्रकट करता है—और इस-में सन्देह नहीं कि उसने यहाँ अपने प्रगल्भ अनुभव का परिचय दिया है।'

इस छोटी-सी टिप्पणी ने मुझे पीटर चेनी की रचनाओं का कुछ परिचय दे दिया था। अब मैं यह समझ गया कि उसने मेरे मित्र पर ऐसा जादू कैसे कर लिया था। कई लेखक हमारे इस नीरस संसार को बड़ा सुन्दर रूप दे देते हैं, और इस प्रकार वे हमारे जीवन की एकरसता को दूर करते हैं और

इसकी शुष्कता और रसहीनता को भुलाने में हमारे सहायक होते हैं। मैं समझता हूँ कि पीटर चेनी भी इन्हीं में से एक है। हमारे मन व मस्तिष्क पर किसी प्रकार का बोझ डाले बिना ही, वह एक अच्छी कहानी सुना सकता है। सम्भव है कि हम उसके पात्रों में अपने आपको न देखें और उनके समान बनने की इच्छा न करें परन्तु वह अपनी पुस्तकों में एक रहस्यमय वातावरण उत्पन्न कर देता है, और हम अनुमान ही लगाते रह जाते हैं। वह जीवन को एक ऐसे युद्ध के रूप में चित्रित करता है जिसमें हमारा संघर्ष हमें अपने अभीष्ट परिणाम तक ही पहुँचा देता है। एक प्रकार से वह हमें वही कुछ देता है, जिसकी कि हमें चाह होती है। इसलिए वह एक पढ़ने योग्य लेखक है और कई लोगों की रुचि के अनुकूल है।

परन्तु अब जब मैं इस घटना को याद करता हूँ, तो मैं यह नहीं कह सकता कि उस समय मेरा उसके प्रति उत्साह उचित था। मैं नहीं कह सकता कि मुझे उसकी एक पुस्तक को खोजने के लिए इतना कष्ट उठाना उचित था, परन्तु मुझे अपने किए पर कोई पछतावा नहीं है। किसी न किसी वस्तु के लिए उत्साह रखना अच्छी बात है और मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मेरे मित्र ने मुझे उत्तेजना दी थी। चाहे कुछ भी हो, मैं पीटर चेनी को अवश्य पढ़ूँगा और शीघ्र ही उसकी एक पुस्तक ले लूँगा। इच्छा करने मात्र से हमें वाञ्छित वस्तु की प्राप्ति हो जाती है।

भगोड़ा विद्यार्थी | ९

अभी उस दिन मैं प्रातःकाल की सैर के लिए निकला। असल में वह मेरी सुबह की सैर न थी, क्योंकि मैं प्रातःकाल आठ बजे के लगभग घर से निकला था। पर मैं और किस ढंग से इसका वर्णन करूँ? मेरे लिए तो तब तक प्रातःकाल ही होता है, जब तक कि मैं अपने काम-धन्धे में न लग जाऊँ। जब तक व्यावहारिक आवश्यकताएँ मेरे समय पर धावा नहीं बोलतीं, तब तक मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अभी प्रातःकाल ही है। हाँ तो, प्रातःकाल तो एक अनुभव की बात है, समय से सम्बन्ध रखनेवाली नहीं। परन्तु उस दिन की सैर मेरे लिए कष्ट का ही कारण हुई। सूर्य की गर्मी ने मुझे सताना आरम्भ किया और मेरा मन ज़रा धीमी चाल से भी चलने को तैयार न था, जो कि मेरी सैर की विशेषता है। वास्तव में मेरा मन उस समय किसी प्रकार का भी श्रम करने को उद्यत न था। मैं तो आराम से अपना समय बिताना चाहता था, और विशाल गगन के नीचे कहीं विश्राम करने की इच्छा रखता था। मुझे शीघ्र ही एक ऐसे स्थान की याद आई, जहाँ कि मुझे विश्राम व शान्ति मिल सकती थी। अतः मैंने उधर का ही रास्ता पकड़ा।

वह स्थान एक ऐसा खेल का मैदान था, जिसकी प्राप्ति व प्रबन्ध के लिए प्रत्येक आधुनिक शिक्षा संस्थान उत्सुक होता है। परन्तु वहाँ उदासी-सी छाई हुई थी। सायंकाल के समय उन क्रीड़ाक्षेत्रों में सबल युवकोचित व्यायाम व कठिन प्रतिस्पर्धा की भावना का प्रदर्शन होता है। उस समय वे जीवन, गति व कोलाहल से भरपूर होते हैं। यह गति खेल के नियमों के अनुसार, परन्तु अतीव आह्लादजनक होती है। कोलाहल ऊँचे स्वर का कर्कश व कर्णकटु होता है परन्तु होता है सजीव। जो मैच वहाँ खेले

जाते हैं, वे उन ग्लैडियेटरों[1] द्वन्द्वयुद्धों की याद दिलाते हैं, जिनके सम्बन्ध में हमने कभी पढ़ा था। उनमें भाग लेनेवाली टीमों के खिलाड़ी वीरोचित महानता का प्रदर्शन करते हैं, और उनकी प्रत्येक चेष्टा सार्थक होती है। वह सर्वनाश अथवा सौभाग्य की सूचना देती है। खेल का तो अर्थ ही विजय अथवा पराजय है—न केवल खिलाड़ियों, वरन् दर्शकों की भी यही भावना होती है। वे सब किसी न किसी पक्ष के समर्थक होते हैं। उनकी निश्चित सहानुभूति होती है और प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष पक्ष का समर्थन करता है। इसलिए मैच न केवल शक्ति व कौशल का पुष्ट प्रदर्शन होता है, वरन् अनेक भावों का प्रबल प्रकाशन भी। मनुष्य अपने व्यक्तित्व को खोकर एक उत्तेजित व उन्मत्त जन-समुदाय का अंग बन जाता है। वह दूसरों के समान ही आह भरता, चिल्लाता अथवा तालियाँ बजाता है। बड़ी शुद्ध भावना के होते हुए भी वह किसी न किसी पक्ष का साथ दिए बिना नहीं रह सकता।

मुझे याद है कि कुछ महीने पहले मैंने इसी मैदान में एक क्रिकेट का मैच देखा था। मैं, अपने आपको किसी पक्ष का साथी बनाए बिना, एक निष्पक्ष दर्शक के रूप में वहाँ पहुँचा था। मुझे इस बात की कोई चिन्ता न थी कि कौन-सा पक्ष जीतता अथवा हारता है। मेरे लिए तो दोनों टीमें एक-सी मनोरंजक अथवा निराशाजनक थीं। मैं तो केवल खेल देखने गया था, क्योंकि उसमें कुछ अच्छे खिलाड़ियों के भाग लेने की आशा थी। जब मैं क्रीड़ाक्षेत्र में पहुँचा तो मुझे यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि एक बड़ा जनसंघ अतीव कोलाहल मचा रहा है और पागलों की-सी चेष्टा कर रहा है। कुछ देर तक तो मुझे उनके व्यवहार पर खीझ-सी आती रही, और मैं उनकी भावना की प्रबलता को न समझ सका, परन्तु आध घण्टे के बाद मैं भी उनका साथ देने लगा। मुझमें भी पक्षपात की भावना आ गई, और मैं भी मुखर हो उठा यद्यपि एक शिष्टाचारपूर्ण ढंग से। मैं भी उस जन-समुदाय के समान ही प्रशंसात्मक अथवा निन्दासूचक शब्दों को प्रयोग

---

१. ग्लैडियेटर : पेशेवर पहलवान, जो कि प्राचीन रोम के कालीसियम नामक थियेटर में आपस में अथवा जंगली जन्तुओं से द्वन्द्वयुद्ध करते थे। उन दिनों जनता में मनोरंजन का मुख्य साधन येही द्वन्द्वयुद्ध थे।

में लाने लगा। मेरा व्यवहार, शायद, उनकी अपेक्षा अधिक शिष्टतापूर्ण था, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि मैं भी उस रोग का शिकार हो गया था।

परन्तु, आज वह स्थान सुनसान पड़ा था। मुझे केवल एक-दो माली हाथ में लम्बे-लम्बे झाड़ू लिए हुए इधर-उधर जाते दीख पड़े। वे उन सूखे पत्तों को हटा रहे थे, जो कि वहाँ बिखरे हुए थे। मैदान के एक कोने में दो भद्र पुरुष बैठे थे। यह स्पष्ट बात थी कि वे पेन्शनर हैं, और प्रतिदिन वहाँ आकर बैठना उनका स्वभाव-सा हो गया है। मैदान के दूसरे सिरे पर मुझे कुछ ऐसे व्यक्तियों का झुण्ड-सा दीख पड़ा, जो कि अनेक प्रकार से अपने शरीरों को तोड़-मरोड़ रहे थे। ये शारीरिक व्यायाम के शौकीन थे, और उन्हें यह क्रीड़ाक्षेत्र, अपने लम्बे व आराम से किए जाने वाले व्यायाम के प्रयोगों के लिए, ठीक जँचा था। उनमें से अधिकांश नवयुवक थे, और उनकी शारीरिक पूर्णता के प्रति उत्सुकता देखकर मुझे अतीव प्रसन्नता हुई। मेरे हृदय में गुप्त रूप से यह भाव उत्पन्न हुआ कि क्या ही अच्छा होता यदि मुझे भी अपनी युवावस्था में शारीरिक उन्नति से ऐसा ही उत्कट प्रेम होता! पास ही एक आया (धाय) एक बच्चे को गाड़ी में घुमा-फिरा रही थी। बच्चे के कपड़े बहुत भद्दे थे, और ऐसा प्रतीत होता था कि उसकी देख-भाल ठीक से नहीं हो रही है। उसके चेहरे से चिड़चिड़ापन टपकता था, और वह, अपनी अवस्था के विपरीत, सुस्त व निर्जीव-सा था। मैंने सोचा, 'शायद इस बच्चे की माँ नहीं है।'

परन्तु अब तक मैंने एक वस्तु की ओर बिल्कुल ध्यान न दिया था यद्यपि वह मेरे अत्यन्त निकट थी। यह कितने आश्चर्य की बात है कि मनुष्य उन पदार्थों को देखने में ही असमर्थ रहते है, जिनकी ओर उनका ध्यान सबसे पहले जाना चाहिए। मैं इतनी देर तक खेल के मैदान को एक दर्शक के-से जिज्ञासाभाव और एक विजेता की-सी गुप्त गौरव की भावना के साथ देखता रहा था, परन्तु पास ही बैठे हुए एक बालक पर मेरी दृष्टि न पड़ी थी। दिन के उस भाग में उसकी क्रीड़ा-क्षेत्र में विद्यमानता मेरे लिए आश्चर्य-जनक थी। मेरे लिए यह पूछना स्वाभाविक था कि यह कौन है और यहाँ क्या कर रहा है?

वह एक गठे हुए शरीर वाला बालक था। उसकी आयु बारह वर्ष के

लगभग थी। उसकी आँखों में एक बुद्धिमत्तासूचक ज्योति थी, और उसके व्यक्तित्व में एक स्फूर्ति का भाव। उसके बाल फैशनेबल ढंग से कटे हुए थे, परन्तु स्वच्छ न थे। उसकी कमीज व निकर दोनों निर्मल थीं। उसने अपना कोट उतार रखा था और उसे किसी वस्तु को छिपाने के काम में ला रहा था। वह निश्चिन्त भाव से बैठा हुआ था, और ऐसा प्रतीत होता था कि किसी दूर की वस्तु के ध्यान में लीन है। पृथक्करण के सिद्धान्त के अनुसार मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि वह एक विद्यार्थी है। 'परन्तु दिन के इस समय भला विद्यार्थी का यहाँ क्या काम ?'— ऐसा मैंने सोचा। 'इसे तो इस समय अपनी कक्षा में अपने गुरु जी के चरणों में बैठे होना चाहिए, और सावधानी से अपना पाठ पढ़ना चाहिए अथवा उनके द्वारा दिया गया काम करना चाहिए।' मेरे मन में आई कि उससे कुछ प्रश्न पूछूँ, परन्तु उसके व्यवहार में एक ऐसा श्रेष्ठता का भाव था कि मुझे उससे कुछ भी पूछने का साहस न हुआ। हाँ, मैंने इतना जान लिया कि उसके कोट के नीचे उसकी पुस्तकें पड़ी हैं। इससे मेरा साहस बढ़ा और मैंने उससे पूछा, "आज तुम स्कूल क्यों नहीं गए ?" वह इस प्रश्न से बिल्कुल न घबराया, और शान्त भाव से बोला, "स्कूल में आज छुट्टी है।" मुझे यह पता था कि उसकी बात ठीक नहीं, क्योंकि मैंने क्रीड़ाक्षेत्र की ओर आते समय स्कूल को लगा हुआ देखा था। इसलिए मैंने उससे कुछ और प्रश्न पूछे, परन्तु वह मेरी जिरह से बिल्कुल न घबराया। वह एक ऐसे साक्षी के समान था, जिसे पैरों से उखाड़ना प्रायः असम्भव है। उसने एक प्रकार से मुझे अनुभव कराया कि मेरे सभी प्रश्न व्यर्थ हैं और मेरे सभी सन्देह निरर्थक। उसकी बातचीत से ऐसा प्रतीत होता था कि वह थोड़ा-सा अवकाश मनाने के लिए आया है और अकेला ही इस प्रकार अपना मनोरंजन कर रहा है। उसे दूसरों का भेद लेने वाले अजनबी या अनुचित रूप में पूछ-ताछ करने वाले व्यक्ति पसन्द न थे। यह सोचकर कि मैंने उसके हृदय पर एक प्रतिकूल प्रभाव डाला है, मैंने उसके घर-बार व माता-पिता के सम्बन्ध में पूछने का यत्न किया। उसने मुझे अपने रहने का ठिकाना बताया और बिना पूछे ही, यह बताया कि उसका पिता पाँच बरस से सेना में गया हुआ था। उसने कहा, "मैं अपने परिवार की सब संतानों में बड़ा हूँ, और मेरी माता मेरी देख-रेख करती है।"

इतना कह चुकने के बाद उसने मेरी ओर पीठ फेर ली, और एक प्रचलित गाने को गुनगुनाना आरम्भ किया। फिर उसने एक लोकप्रिय गीत की कुछ पंक्तियाँ गाईं। इसके बाद कुछ क्षण के लिए वह चुपचाप बैठा रहा। फिर एकदम ही उसने शीर्षासन करना आरम्भ किया। मैं समझता था कि वह उसे न कर सकेगा, क्योंकि मैं एक व्यायामशास्त्री के निरीक्षण में निरन्तर प्रयत्न करने पर भी इस काम में असफल रहा था। परन्तु उस बालक ने वह काम बड़ी सुगमता से कर लिया। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह कई मिनट तक उस आसन को करता रहा। फिर वह सीधा होकर बैठ गया, और किसी दूरस्थ पदार्थ के चिन्तन में लीन हो गया।

उसके इस व्यवहार से मुझे यह निश्चय हो गया कि वह एक भगोड़ा विद्यार्थी है और स्कूल से खिसक आया है। परन्तु मैं इस बात का अनुमान न लगा सका कि उसने ऐसा क्यों किया। संभव है कि कोई अध्यापक उसे तंग करता हो और इससे उसका मन स्कूल जाने से उचट गया हो। यह भी संभव है कि अपने पिता के चिरकालीन प्रवास के कारण उसका चित्त अशान्त-सा रहता हो और स्कूल की साधारण दिनचर्या व नीरस जीवन में उसे कोई रुचि न रही हो। शायद आज प्रातःकाल उसकी माता ने उसे झाड़ डाली थी, सो वह स्कूल से भागकर अपना बदला चुका रहा था। हो सकता है कि किसी विद्यार्थी से उसका झगड़ा हुआ हो और उसमें हार खाकर वह यहाँ चला आया हो और अब अपने आगामी कार्यक्रम की चिन्ता में लीन हो। शायद उसकी साहसी आत्मा के विकास के लिए स्कूल में पूरा-पूरा अवकाश न था और वह स्वतन्त्रता का जीवन बिताना चाहता था।

चाहे कुछ भी हो, मुझे इस बात का दुःख था कि मैंने उसकी खिल्ली क्यों उड़ाई। मैं गुप्त रूप से उसके साथ सहानुभूति अनुभव करने लगा। मुझे याद आ गया कि एक बार मैं भी भगोड़ा विद्यार्थी बना था। परन्तु मैंने यह काम अधिक विशाल रूप में और एक सप्ताह भर लगातार किया था। नागरिक जीवन से आकर्षित होकर मैं स्कूल से भागा था। मैं उन दिनों एक नगर में रह रहा था, और वहाँ मैंने कई रोचक बातें पाई थीं। वहाँ क्रिकेट के मैच होते थे, जो कि अतीव मनोरञ्जक होते थे; और रेलगाड़ियाँ थीं, जोकि एक व्यक्ति को कहीं से कहीं पहुँचा सकती थीं। वहाँ

खाने-पीने की वस्तुएँ अनेक प्रकार की व अधिक मात्रा में थीं ; और स्वतन्त्रता भी अधिक थी। इसलिए मैंने अवसर पाते ही स्कूल से भागने की चेष्टा की। मैं एक नगर में सप्ताह भर के लिए जा टिका और वहाँ खूब मौज मनाई। मैंने सोडावाटर पिया---सोडावाटर उन दिनों जीवन-रसायन के समान प्रतीत होता था; और मैंने रेलगाड़ी में थोड़ी-थोड़ी दूर तक सैर की। रेलगाड़ियाँ, उन दिनों एक जादू की रचना-सी प्रतीत होती थी, मानो वे जादू के गलीचे हों। परन्तु मेरे लिए सबसे अधिक आकर्षण था क्रिकेट टूर्नामिण्ट का। क्रिकेट के खिलाड़ी बड़े गौरवशाली व्यक्ति प्रतीत होते थे, और क्रिकेट का खेल भी सबसे अधिक साहसपूर्ण खेल जाना पड़ता था। सप्ताह भर मैंने पूर्ण स्वतन्त्रता का जीवन बिताया। फिर मेरी थोड़ी-सी धनराशि समाप्त हो गई, और मुझे शीघ्र ही घर को लौट जाना पड़ा। मैं हेडमास्टर साहब के सामने पश्चात्ताप की मुद्रा में जा खड़ा हुआ। उनका विश्वास था कि प्रत्येक कार्य को दूसरों से करवाना चाहिए, और उन्होंने मुझे दण्ड देने का काम मानीटर को सौंप दिया। मानीटर को वश में करना कोई कठिन काम न था। इसलिए मैं पिटने से साफ बच गया। यह एक ऐसा रोचक अनुभव था, जिसके लिए मुझे कभी पश्चात्ताप नहीं करना पड़ा। इसके स्मरण से ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा वह स्वाधिकार-प्राप्ति का प्रयत्न सर्वथा अनुचित न था। कम से कम एक सप्ताह के लिए तो मैंने स्वतन्त्रता का जीवन बिताया और अपनी मनमानी की। मैं एक ऐसे पक्षी के समान था जो कि अपने पिंजरे से निकल भागा हो, और फिर लौटकर वहीं आ गया हो।

मैं नहीं जानता कि यदि मैं स्कूल को न लौट आता तो मेरी क्या दशा होती। इस विचार से मेरे हृदय को एक धक्का-सा लगता है, और मैंने कभी इसके तर्कसंगत परिणाम तक पहुँचने का यत्न नहीं किया। लोग कहते हैं कि बहुत-से व्यक्ति जो स्कूल से भाग जाया करते थे, जीवन में अत्यन्त सफल रहे। लार्ड क्लाईव[१] व लार्ड रीडिंग[२] के दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक उदाहरण

लार्ड क्लाईव (१७२५–७४ ई०) १७ वर्ष की आयु में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के क्लर्क के रूप में भारत में आया। अपनी नैसर्गिक प्रतिभा व साहस से इसने युद्धक्षेत्र में अच्छी कीर्ति प्राप्त की और शीघ्र ही सेनापति के पद पर

(शेष अगले पृष्ठ के पद तल पर)

कौन नहीं जानता ? परन्तु भारत में ऐसी सम्भावना का स्वप्न लेना भी ठीक नहीं; फिर मैं यही सोचना पसन्द करता हूँ कि वह लड़का स्कूल में लौट गया है, और फिर से अपने दैनिक कार्यक्रम में जुट गया है। मुझे विश्वास है कि वह अपने जीवन में सफलता प्राप्त करेगा। उसके लिए तीन मार्ग खुले हैं—वह एक गवैया, व्यायामशास्त्री अथवा फिलासफर (दार्शनिक) बन सकता है। उसकी आत्मा के कल्याण के लिए मैं केवल यह प्रार्थना कर सकता हूँ कि वह फिलासफर न बने। भारत में ऐसे लोगों की पहले ही बहुतायत है।

जा पहुँचा। भारत में फ्रांसीसियों के प्रभाव को नष्ट करके इसने अँगरेजों के राजनैतिक प्रभुत्व का द्वार खोल दिया। प्लासी के युद्ध में नवाब सिराजुद्दौला को हराकर इसने कम्पनी की सत्ता स्थापित की और इस प्रकार भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव रखी। बचपन में यह बहुत उपद्रव किया करता था, इसलिए इसके पिता ने नौकरी दिलवाकर इसे घर से छुट्टी दे दी थी।

२. लार्ड रीडिङ्ग इङ्गलैण्ड के प्रमुख न्यायाधीश (१९१३–२१) थे। फिर भारत के वायसराय (१९२१–२६) बने। इनका बचपन भी बहुत कुछ शरारत करने-कराने में ही बीता था।

नये साल के संकल्प | १०

आपको शायद इस बात पर आश्चर्य होगा कि मैं नये साल के संकल्पों के सम्बन्ध में उस समय लिखने बैठा हूँ, जबकि वर्ष आधे से अधिक बीत चुका है। मैं जान-बूझकर ऐसा कर रहा हूँ। मैंने अपनी इच्छा से ही ऐसे समय को चुना है, जो कि मेरे लिए विशेष महत्त्व रखता है। इस काल-बिन्दु से न केवल मैं आगे की ओर देख सकता हूँ, वरन् पीछे की ओर भी दृष्टि डाल सकता हूँ। इससे मेरी आत्मगौरव की भावना में वृद्धि होती है। मैं अपने आपको उस मुख्याधिकारी के समान समझता हूँ जोकि न केवल अपनी फर्म का प्रोस्पेक्टस ही जनता के आगे पेश कर सकता है, वरन् उसकी आय-व्यय का ब्योरा भी। मैं तो मानो अपनी स्थिति पर पुनर्विचार कर रहा हूँ। मैं एक ऐसे सेनापति के समान हूँ, जोकि शत्रु के साथ युद्ध आरम्भ करने के बाद, अपनी सेना का परिचालन करते हुए ही यह सोचना उचित समझता है कि उसे कितनी सफलता प्राप्त हुई है। परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि आप ऐसा समझने लगें कि मेरा किसी बड़ी व्यापारिक फर्म या कम्पनी से किसी प्रकार का सम्बन्ध है या मैं किसी भी रूप में युद्धविद्या का अभ्यास करता हूँ। मुझमें तो स्वभाव से ही व्यापार-बुद्धि का अभाव है, और मेरी प्रकृति अतीव शान्तिप्रिय है। आजकल हम युद्ध व व्यावहारिक मनोविज्ञान के सम्बन्ध में इतना कुछ पढ़ते हैं कि इन दोनों विद्याओं की शब्दावली को उधार लिए बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

मैं आपको यह बतला देना चाहता हूँ कि मैं स्वभाव से ही ऐसा व्यक्ति नहीं हूँ जोकि अपने काम-काज को भली प्रकार सोच-समझ कर करता है। मैं तो केवल अंधाधुंध काम करना जानता हूँ—मैं ऐसा व्यक्ति हूँ जो कि जीवन-क्षेत्र में आखें बन्द किए-किए ही चलता है। मैंने किसी पुस्तक में पढ़ा था कि मनुष्यमात्र को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—इंजीनियर

और साहसी व्यक्ति । इंजीनियर विघ्न-बाधा की कुछ परवाह न करके अपनी स्कीम तैयार करता है । मैं कुछ ऐसे व्यक्तियों को जानता हूँ, जोकि अपने जीवन के मानचित्र को बड़ी सावधानी से तैयार करते हैं । उनकी स्कीमें तो सदैव दस वर्ष पहले ही तैयार हो जाती हैं । वे १९५० में जी रहे हैं तो, उनकी आँख १९६० पर लगी हुई है । यदि हम मनुष्य की औसत आयु को सत्तर वर्ष मान लें, तो हमें पता चलेगा कि उन्होंने इस संसार रूपी दुःखपूर्ण घाटी में अपनी यात्रा का प्रतिवर्ष का कार्यक्रम निश्चित कर रखा है । आप उनके आगे कोई प्रस्ताव रखें, तो वे झट बोल उठेंगे, "इसे तो मैंने १९५३ के लिए सुरक्षित रखा है । इस समय इस पर बातचीत करने से क्या लाभ है ?" मैं इन लोगों की सराहना किए बिना नहीं रह सकता । इनके तो स्मरणमात्र से मुझे आश्चर्य होता है । वे तो उन सेनापतियों के समान हैं, जोकि अपनी सेनाओं का नेतृत्व कर रहे होते हैं । उन्होंने युद्ध का नक्शा तैयार किया हुआ है, और वे विधिपूर्वक, बड़े जोश-खरोश से, मोह-ममता छोड़कर लड़ाई कर रहे हैं । उनकी विजय-यात्रा में कोई वस्तु बाधक नहीं हो सकती, और न ही उन्हें अपने संकल्प से हटा सकती है ।

एक और प्रकार के व्यक्ति होते हैं, जिन्हें हम 'साहसिक' कहकर पुकार सकते हैं। इनका न तो कोई निश्चित लक्ष्य होता है,और न ही कोई स्थिर कार्यक्रम । वे सदा किसी न किसी वस्तु की आशा लगाए रखते है, और जब उन्हें वह वस्तु प्राप्त हो जाती है, तो वे उसे सुदृढ़ हाथों से पकड़ लेते हैं । उनमें सावधानी और दूरदर्शिता तो लेशमात्र भी नहीं होती, परन्तु क्रिया-शक्ति पर्याप्त मात्रा में होती है । उनकी दृष्टि बाज के समान सूक्ष्म व निर्मल होती है । उनमें व्यावहारिक ज्ञान चाहे अधिक न हो, स्वाभाविक ज्ञान और साहस की कोई कमी नहीं होती । उन्हें जीवन में अलौकिक सफलता प्राप्त होती है, अथवा गौरवपूर्ण असफलता । उनके कारनामे चाहे साधारण ही क्यों न हों, उनकी आकांक्षाएँ सदा उच्च कोटि की होती हैं । वे चाहे एक सौ भी न पा सकें परन्तु उनकी दृष्टि सदैव एक लाख पर होती है । ऐसे व्यक्ति ही बड़े-बड़े साम्राज्यों की स्थापना करते हैं, और कभी-कभी वह काम कर दिखाते हैं, जोकि असम्भव-से प्रतीत होते हैं । क्लाईव ऐसे ही व्यक्तियों में से एक था । साधारण दैनिक कार्यक्रम में अपना जीवन बिताने के लिए

उसका जन्म नहीं हुआ था, और न ही उसमें इतनी सहनशीलता थी कि वह अपने आपको इस चक्की में पिसने दे। स्कूल में उसके सभी अध्यापक उससे निराश हो चुके थे, और घर में वह अपने माता-पिता के लिए एक कठिन समस्या था। उसके अध्यापकों व माता-पिता को यह न सूझता था कि उसका क्या किया जाए। जब वह क्लर्क बनकर भारत में चला आया तो भी उसका दिल अपने काम में न लगा। परन्तु वह तो जन्म से ही अतीव साहसी था, और उसे तत्कालीन भारतवर्ष की अस्त-व्यस्त अवस्था में अपने शौर्यप्रेम की पूर्ति के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो गई।

मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मुझमें उद्यम की मात्रा कम है। मेरा जीवन सर्वथा लक्ष्यहीन है। सच पूछो तो, मैंने अपने जीवन में कई बार यह इच्छा की है कि मैं अपने जीवन को एक निश्चित ढाँचे में ढालूँ अथवा किसी प्रकार के साहसपूर्ण कार्यों को हाथ में लूँ। परन्तु मेरी कामनाएँ सदा निष्फल ही होती रही हैं। मेरी आत्मा बलवान् थी, परन्तु मेरा शरीर उसका साथ न देता था। कभी-कभी मेरी तुलना एक ऐसी मोटर गाड़ी से की जा सकती थी, जोकि चलाए जाने के दस मिनट के अन्दर ही किसी वस्तु से टकराकर टूट-फूट गई हो, और कभी-कभी ऐसी गाड़ी से जोकि पर्याप्त दूरी तक जाकर नष्ट-भ्रष्ट हो गई हो। मैंने अपनी इन असफलताओं से यह शिक्षा ग्रहण की है कि मुझे अपनी इच्छाशक्ति पर अनुचित दबाव न डालना चाहिए और अपने जीवन को हठात् किसी नये ढाँचे में न ढालना चाहिए। कम से कम पिछले कुछ वर्षों में तो मैं आत्मसुधार का कोई प्रयत्न किए बिना ही केवलमात्र जीवन के दिन पूरे करता रहा हूँ।

मेरा एक मित्र है, जिसे जीवन में निरन्तर सफलता ही मिलती रही है। उसके आत्मोन्नति के वृत्तान्त ने एक प्रकार से मेरी आँखें खोल दी हैं। बैञ्जमिन फ्रैंकलिन[1] के समान उसने आत्मसुधार के मार्ग को अपनाया है, और उसमें आश्चर्यजनक सफलता पाई है। उसका जीवन मेरे लिए सदैव

१. बैञ्जमिन फ्रैंकलिन (१७०६–१७९०) : सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली। मुद्रक, समाचारपत्र संपादक, लोकसेवक, वैज्ञानिक आविष्कारक तथा राजनीतिज्ञ।

अनुकरणीय रहा है। पहले की अपेक्षा, पिछले वर्ष में इसका प्रभाव मुझपर विशेष रूप में अधिक रहा है।

सौभाग्य से कहो अथवा दुर्भाग्य से, पिछले क्रिसमस के सप्ताह में मेरी उससे अचानक ही भेंट हो गई। हम दोनों एक ही सभा में उपस्थित थे, और वहाँ अकस्मात् मैं उसके पास जा बैठा। उसमें और मुझमें आकाश-पाताल का अन्तर था। हमारी आयु लगभग एक-सी है, परन्तु कोई भी व्यक्ति पहली बार देखने पर ही ऐसा नहीं सोच सकता। वह तो सुरक्षित स्वास्थ्य का सजीव चित्र था, और मैं उसके सामने अतीव कृशकाय दीख पड़ता था। वह एक क्रियाशील व्यक्ति था—शक्ति तथा उत्साह से भरपूर, और मै तो अधमरा-सा दीख पड़ता था। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता था कि उसका तो जन्म ही विश्व-विजेता बनने के लिए हुआ है,और वह प्रत्येक सुअवसर से लाभ उठा सकता है। उसके शरीर से मानो आरोग्य और आशा की किरणें फूट-फूटकर निकल रही थीं, और मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि उसे किसी वस्तु से भय या आशंका नहीं हो सकती। उसके पास बैठने से मुझे कुछ अशान्ति-सी अनुभव हुई। एक बेढंगी चाल चलने वाले व्यक्ति का किसी कुशल कारीगर से भय खाना स्वाभाविक ही है।

हम दोनों को उस सभा में भाषण देना था, और दैवेच्छा से मेरी बारी पहले आई। जब मैं बोलने के लिए उठा तो उसने बड़े प्रेम से कहा, "अपने कोट के बटन बन्द कर लो। तुम इन बातों में इतने लापरवाह क्यों हो ?" उसके इन वचनों ने मुझपर मानो जादू का असर किया। ये भर्त्सना व शासन के शब्द न थे, वरन् मित्रतापूर्ण परामर्श था, जिन्हें अस्वीकार करने का साहस मुझमें न था। और किसी अवसर पर शायद मैं उन्हें तुच्छ व असार समझकर हँसी में उड़ा देता; परन्तु उस समय मेरे लिए ये शब्द अतीव महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो किसी डाक्टर ने मेरे पुराने रोग का निदान ठीक ढंग से करके उसके लिए अत्यन्त गुणकारी औषधि की सूचना दे दी है। अपने आपमें तो वह बात कोई विशेष महत्त्व न रखती थी, क्योंकि इससे किसी का क्या बनता-बिगड़ता है कि वह कोट के बटन बन्द करता है या नहीं।

जब सभा समाप्त हो गई, तो हमने एक दूसरे से विदा ली। परन्तु मैंने

उसके आदेश को नहीं भुलाया; मैं उसे मन ही मन दुहराता रहा। मैंने उस पर आचरण करने का निश्चय भी कर लिया। मैं दूसरे लोगों के कोटों में गुप्तरूप से दिलचस्पी लेने लगा। मुझे उनके बटन ठीकठाक लगे देखकर बहुत प्रसन्नता होती। कभी-कभी जब मुझे कोई ऐसा व्यक्ति दीख पड़ता जिसके बटन ठीक बन्द न होते, तो मेरे मन में आता कि उसके पास जाकर कहूं, "कृपया, कोट के बटन बन्द कर लीजिए।" मैं बड़ी कठिनाई से अपने आपको ऐसा करने से रोकता था। यह तो एक समाज सुधारक का काम था और मैं इस मार्ग का पथिक नहीं बनना चाहता था। मेरा उद्देश्य तो केवल मात्र यह था कि इस दिशा में चलकर अपना ही सुधार करूँ। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सुधार का काम, दान के समान, घर से ही आरम्भ होना चाहिए।[1]

यह सब बातें तब हुईं, जबकि नया वर्ष कुछ दूर न था। कुछ वर्षों से मेरा यह स्वभाव-सा बन गया था कि आगामी वर्ष के लिए कुछ संकल्प करूँ। परन्तु अब मैंने इस व्यसन को छोड़ दिया था। ऐसे संकल्प करने का भला क्या लाभ है, जिन पर कि हम आचरण नहीं कर सकते? एक बार मैंने निश्चय किया कि मैं प्रतिदिन कुछ घण्टों के लिए नियमित रूप से काम करूँगा, परन्तु अभी दो दिन भी न बीते थे कि मैंने अपने आपको पूर्ववत् समय नष्ट करते हुए पाया। एक और अवसर पर मैंने यह संकल्प किया कि मैं भोजन के प्रत्येक ग्रास को बत्तीस बार चबाकर खाऊँगा। मुझे किसी ने बताया था कि ग्लैडस्टन साहब[2] ऐसा ही किया करते थे, और इस कल्पना से मुझे अतीव आनन्द होता कि कम से कम इस बात में तो मैं ग्लैडस्टन की समता कर सकूँगा। दो भोजनों के अवसर पर तो मैं अपने संकल्प पर स्थिर रहा, परन्तु तीसरे की बारी आते ही मेरी गपागप भोजन निगलने की पुरानी प्रवृत्ति प्रबल हो उठी। ग्लैडस्टन की प्रेतात्मा मेरे सामने आ खड़ी हुई और

---

१. सुधार का काम घर से आरम्भ होना चाहिए। अंग्रेजी कहावत 'Charity begins at home' की ओर संकेत है।

२. ग्लैडस्टन (१८०९–९८ ई०): प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ व वक्ता। चार बार इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री बने।

तर्जनी उठाकर मुझे चेतावनी देने लगी, परन्तु उसका यह प्रयत्न निष्फल हुआ। मानो वह कह रही हो, 'यदि तुम इस अभ्यास को बनाए रखोगे तो दीर्घायु के रहस्य को पा लोगे; और यदि इसका त्याग कर दोगे तो विनाश को पा लोगे।' परन्तु ग्लैडस्टन का प्रभाव भी मेरा उद्धार न कर सका। एक बार मैंने नियमित रूप से प्रातः भ्रमण करने का निश्चय किया। मुझे ऐसा कृपालु मित्र भी मिल गया, जिसने प्रतिदिन प्रातःकाल मुझे बुलाकर नियमपूर्वक भ्रमण के लिए ले जाना स्वीकार किया। सप्ताह भर के लिए यह काम नियमपूर्वक चलता रहा, परन्तु फिर बीच में ही छूट गया। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रातःकाल का शीतल पवन मेरे लिए इतना आकर्षक न था, जितना कि मेरा गुदगुदा बिछौना। मेरे मित्र ने मुझे प्रातः भ्रमण के लाभ बतलाने का निष्फल प्रयत्न किया, पर मेरी सुबह की सैर जो एक बार छूटी तो छूट ही गई।

एक बार किसी व्यक्ति ने मुझे बताया कि मानसिक पिलपिलेपन का इलाज यह है कि कुछ पद्यों को कण्ठस्थ किया जाए। तब मैंने शिशु संगीत की एक बड़ी-सी पोथी खरीदी, और उसमें से प्रति सप्ताह एक गीत याद करना शुरू किया। यह देखकर सब लोग मेरी हँसी उड़ाने लगे, और कइयों ने तो यहाँ तक कह डाला, "इसने फिर से बचपन में पैर धरा है।" पर, इन कटाक्षों की परवाह न करता हुआ, मैं अपने काम में जुटा रहा। तीन सप्ताह के बाद मेरा सब जोश ठण्डा पड़ गया, और मैंने फिर से अपने पुराने स्वभाव को अपना लिया। आप शायद कहेंगे कि मेरे इन प्रयत्नों का उद्देश्य अपनी मानसिक व आचार सम्बन्धी उन्नति करना था। हाँ तो, एक बार मैंने अपनी आत्मिक उन्नति करने का भी बीड़ा उठाया था। परन्तु वह एक ऐसा भेद है जिसे प्रकट करने से मेरे गुरुदेव ने मुझे रोक रखा है। चार दिन तक, प्रातः-सायं, मैं कुछ विशेष क्रियाओं को करता रहा, परन्तु फिर उन्हें चालू रखने का धैर्य मुझमें न रहा। गुरुदेव ने मुझे समझाया कि मेरा यह काम उचित नहीं, परन्तु मुझपर उनकी बात का कुछ प्रभाव न पड़ा। तब उन्होंने कहा, "मुझे तो शुरू से ही तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति के सम्बन्ध में कोई विशेष आशा न थी।"

यह बात स्पष्ट है कि मेरा जीवन टूटी प्रतिज्ञाओं व अधूरे संकल्पों की

एक लड़ी ही है। परन्तु मैं सदैव इस बात से लज्जा अनुभव करता हूँ। कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय में मैं एक राजनीतिज्ञ के समान हूँ। मुझे बताया गया है कि बहुत-से राजनीतिज्ञ कभी भी अपना वचन पूरा नहीं करते। वे ऐसी प्रतिज्ञाएं करते हैं जिन्हें कि वे कभी नहीं निभाते। वे अपने प्रण को नहीं पालते, और अपनी बात पर नहीं टिकते। शायद इस बात में कोई विशेष गुण है, नहीं तो ये लोग इतनी उन्नति न कर पाते। मेरी धारणा है कि प्रण करना और, किसी प्रकार की हानि उठाए बिना, अपने प्रण को तोड़ना एक महत्त्वपूर्ण कला है। कम से कम इस दिशा में तो मैं कुछ कर ही पाया हूँ। मैंने कई संकल्प किए हैं, और उन्हें कभी पूरा नहीं किया। जब मेरे मन में आशा का संचार होता है तो मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि मुझमें वही प्राकृतिक गुण हैं जो कि किसी राजनीतिज्ञ व शासन-कला-विशारद व्यक्ति में पाए जाते हैं। यह विचार मन को बहुत सान्त्वना देता है। सच पूछो तो, राजनीतिज्ञों और शासन-कला-विशारदों का वर्तमान युग में, किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा, अधिक महत्त्व है। इसलिए उनका-सा हृदय रखने में कोई लज्जा की बात नहीं। कम से कम मुझे तो उनमें व अपने आपमें बहुत कुछ समानता दीख पड़ती है।

हाँ, उनमें और मुझमें एक अन्तर है। कुछ प्रतिज्ञाएँ ऐसी होती हैं, जो कि दूसरों के साथ की जाती हैं और कुछ थोड़ी-सी ऐसी भी जोकि मनुष्य अपने आपमें करता है। यह सच है कि मनुष्य दूसरी प्रतिज्ञाओं की अपेक्षा पहली प्रतिज्ञाओं के विषय में अधिक सावधान होता है। यदि कोई व्यक्ति दूसरे के प्रति की गई प्रतिज्ञा को तोड़ता है, तो वह, प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार, चमार कहलाने का अधिकारी होता है। मैं यह नहीं जानता कि चमार को ही इस मान अथवा अपमान के लिए क्यों चुना गया है। मेरे हृदय में तो चमारों के प्रति पूरे सम्मान का भाव है, क्योंकि उन्होंने मुझे कभी किसी प्रकार का धोखा नहीं दिया। उन्होंने तो, एक प्रकार से, बड़ी भलमनसाहत से मेरे साथ किए अपने वचनों को पूरा किया है, और मुझे सदैव इस बात पर आश्चर्य होता रहा है। मेरे जूते बनाने में तो वे इतने दयालु सिद्ध हुए हैं कि वे उन्हें सदैव माप से कुछ बड़ा बना देते हैं। इसी कारण मैं उस वाक्य के शाब्दिक व आलङ्कारिक अर्थ को नहीं समझ पाता, जिसका कि

जूते के काटने से सम्बन्ध है। मेरे साथ मेरे दर्जियों का व्यवहार इसके विपरीत रहा है। उन्होंने मेरे साथ अपना वचन कभी पूरा नहीं किया। मुझे उनका जो अनुभव है, उससे मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मुझे अपने कपड़े कम से कम छः महीने पेशगी बनवा लेने चाहिएँ। मैं अपने गर्मियों के कपड़ों की चिन्ता सर्दियों में करने लगता हूं, और सर्दियों के कपड़ों की उस समय जबकि गर्मी अपने पूरे यौवन पर होती है। अस्तु, दूसरों के साथ वचन निभाना तो एक बात हुई— कोई भी मनुष्य शायद झूठा अथवा प्रणघातक कहलाने के भय से ऐसा कर लेगा। परन्तु अपने आपसे की गई प्रतिज्ञा की तो बात ही और है। एक व्यक्ति दूसरों से भय खा सकता है, पर उसे अपने आपसे भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए किसी को भी अपने साथ न्याय करने की चिन्ता नहीं होती।

कुछ समय पहले तो मैंने अपनी परिस्थिति को ऐसा ही समझा था; परन्तु अब कुछ समय से मेरी अवस्था में परिवर्त्तन आ गया है। मेरे भीतर कोई सत्ता है, जो कि मुझसे न्यायोचित व्यवहार की माँग करती है। मैं उसकी अपने विरुद्ध आलोचना को रोकने का निष्फल प्रयत्न करता रहा हूँ। बहुत समय तक मैं विजयी रहा हूं, परन्तु अब मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इस युद्ध में मेरी हार अनिवार्य है। इसका परिणाम है कि यह मुझे अपने प्रति की गई प्रतिज्ञा को तोड़ने न देगी। हाँ तो, पिछले कुछ महीनों मुझे अपने कोट के बटनों को भली प्रकार बन्द करके रखना पड़ा है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नये वर्ष के संकल्प कभी-कभी अतीव भयजनक हो सकते हैं। मेरे अपने प्रण का-सा साधारण संकल्प भी मुझे अशान्त रखने को पर्याप्त है। मैं नहीं जानता कि उन लोगों की क्या दशा होती है, जो कि बड़े-बड़े संकल्प करते हैं। मैं तो केवल उसका अनुमान लगाकर उनसे सहानुभूति प्रकट कर सकता हूँ।

बचाओ ! बचाओ !! बचाओ !!! | ११

कुछ दिन हुए जबकि मैं अपने एक मित्र से कुछ समय तक बातचीत करने के बाद विदा होने लगा तो उसने मुझे दो छोटी-छोटी पुस्तकें दीं, जिनकी छपाई बुरी थी और देखने में भी भद्दी लगती थीं। उसने मुस्कराते हुए कहा, "इन्हें आराम से पढ़ना; ये तुम्हें बहुत लाभ पहुँचाएँगी !" यह जानने का यत्न किए बिना ही कि उनमें क्या लिखा है, मैंने उन्हें अपने एक पुराने फैशन के कोट की जेब में डाल दिया। फिर मैं उनको बिल्कुल भूल बैठा। कुछ दिनों के बाद, एक साधारण-सी वस्तु को—जिसे मैंने कहीं इधर-उधर रख दिया था—खोजते हुए, मैंने अपनी जेबों को टटोला तो वे दोनों पुस्तकें मेरे हाथ में आ गईं। मुझे इस बात से बहुत आश्चर्य ही नहीं, कुछ-कुछ दुःख भी हुआ कि इन दोनों सिकुड़े हुए पन्नों वाली पुस्तकों का एक अतीव महत्वपूर्ण विषय से सम्बन्ध था। उनका साइज़, छपाई व जिल्दबन्दी उस विषय की वास्तविक महत्ता की तुलना में अतीव तुच्छ थीं, जिसका कि उनमें वर्णन किया गया था। उनके सस्तेपन को देखकर, अनुभवी पाठक के अतिरिक्त, कोई भी व्यक्ति उन्हें अवश्य ही दूर फेंक देता। सम्भव है कि एक पक्का पुस्तक प्रेमी भी उन्हें देखना पसन्द न करे, क्योंकि वे बहुत ही सस्ती थीं। एक और प्रकार के पाठक ही उनको पढ़ने का साहस कर सकते थे।

परन्तु मैं यह न समझ सका कि वे पुस्तकें ऐसे बुरे कागज़ पर क्यों छापी गई थीं, और उनकी छपाई इतनी बुरी क्यों थी। मेरे वश की बात होती तो मैं इन पुस्तकों का बहुमूल्य संस्करण निकलवाता। मैं उनका मूल्य बहुत अधिक रखता और उन्हें केवल उन लोगों के हाथ बेचता जोकि इस बात का पवित्र प्रण करते कि वे उन पुस्तकों को सावधानी से पढ़ेंगे और उनमें दी हुई प्रत्येक शिक्षा पर आचरण करेंगे। सच पूछो तो मैं उन्हें यही

मान देता जोकि मत-मतान्तरों के नेता अपनी रचनाओं को देते हैं। उनकी पुस्तकें एक सर्वोत्तम ढंग से प्रकाशित की जाती हैं, और उन्हें भक्त लोगों में बहुत महँगे दाम पर बेचा जाता है। उन्हें व्यक्तिगत प्रचार के लिए ही रखा जाता है और उनके क्षेत्र से बाहर का कोई व्यक्ति उनका दर्शन भी नहीं कर पाता। बाहर के केवल वही लोग उन्हें देख पाते हैं, जिनके सम्बन्ध में यह आशा हो सकती है कि वे शीघ्र ही इस संप्रदाय में प्रवेश करेंगे। मैं समझता हूँ कि यह उन पुस्तकों से पूरा-पूरा लाभ उठाने का सर्वोत्तम ढंग है, जिनकी रचना ही मनुष्य के चरित्र पर प्रभाव डालने के लिए हुई है। वे पुस्तकें व पुस्तिकाएँ जोकि सस्ते दामों पर प्रकाशित की जाती व बाँटी जाती हैं, अपने उद्देश्य को पूरा नहीं कर पातीं। ये रद्दी की टोकरी में फेंक दी जाती हैं अथवा रद्दी काग़ज़ के रूप में बेच दी जाती हैं। कोई व्यक्ति उन्हें पढ़ना व अपने पास रखना नहीं चाहता, क्योंकि जब उन्हें पढ़ा नहीं जाता तब भी वे उस व्यक्ति को दोष नहीं देते जोकि अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं करता। उनका प्रकाशन ऐसे बेढंगे तरीके से होता है कि उनमें वह नम्रतासूचक लेख नहीं होता, जोकि खब्ती व अधपगले लोगों की पुस्तक में दिया होता है। ऐसे व्यक्ति हमें सदैव यही बताते हैं कि उनकी पुस्तकों का मूल्य, रुपए नहीं वरन्, पाठक के धैर्य व लाभ के रूप में आना चाहिए।

अस्तु, ये छोटी-छोटी पुस्तकें बड़ी उन्नतिकारक सामग्री से भरी हुई थीं। वे यातायात के नियमों के समान स्पष्ट, नीतिशास्त्र की पुस्तकों के समान उपदेशपूर्ण और एक यात्री पथ-प्रदर्शक पुस्तिका के समान व्यावहारिक ज्ञान से भरपूर थीं। मैं उन पुस्तकों के लेखक की चतुराई पर जी-जान से लट्टू हो गया। वह अवश्य ही एक विलक्षण व्यक्ति होगा। उसके चरित्र में वकील, फिलासफर (दर्शनशास्त्री) तथा एक क्रियात्मक राजनीतिज्ञ का अंश विद्यमान रहा होगा। एक बार उसने मुझे उस सेनापति की याद दिलाई, जोकि एक युद्ध को चलाने के लिए बड़ी विस्तृत आदेश-सूची निकालता है। फिर एक बार मुझे वह बेकन[1] के समान स्मरणीय सूक्तियों का लेखक प्रतीत

---

१. बेकन (१५६१–१६२६ ई०) : फिलासफर (दार्शनिक), राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक व साहित्यकार।

हुआ। एक बार मैंने उसे एक धर्म प्रचारक के रूप में देखा, जोकि जीवन का एक नया मार्ग दिखाता है। सचमुच ही वह लेखक एक अलौकिक प्रतिभा का स्वामी था। इसमें सन्देह नहीं कि वह पाठक की कल्पनाशक्ति को उत्तेजित न कर सकता था, परन्तु यही एक गुण तो लेखक का सर्वस्व नहीं है। कई और भी ऐसी बातें हैं जोकि हम एक अच्छे लेख में देखना चाहते हैं। ये पुस्तिकाएँ देखने में नीरस हो सकती थीं, परन्तु उनमें कुछ ऐसी बातें थीं जिससे वे पाठक के हृदय पर प्रभाव डाल सकती थीं।

सम्भव है कि कोई व्यक्ति यह समझे कि मैंने उतावलेपन में यह सर्वसाधारण सम्बन्धी बात कह दी है; परन्तु, यह सच्ची बात है कि उन्होंने मुझे इस बात का निश्चय करा दिया था कि उनमें दिया हुआ कार्यक्रम सर्वथा उपादेय है। यह कहा जा सकता है कि मैंने उन्हें उस समय पढ़ा होगा जबकि मेरा मन बाह्य प्रेरणा से प्रभावित होने की दशा में था। कोई व्यक्ति शायद यह युक्ति दे कि चाहे क्षणमात्र के लिए ही क्यों न हो, मेरी भ्रान्तिमूलक प्रकृति एक श्रेष्ठतर प्रवृत्ति के अधीन हो गई, इसलिए मुझे उनका प्रभाव पवित्र प्रतीत हुआ। यह भी कहा जा सकता है कि मुझ पर उन पुस्तकों का वैसा ही प्रभाव पड़ा जैसाकि स्वास्थ्य सम्बन्धी लेखों का उन लोगों पर पड़ता है जोकि देखने में सर्वथा नीरोग होते हैं। मुझे याद है कि मैं एक बार दाँतों के एक डाक्टर के पास गया। वह एक और ग्राहक से बातचीत कर रहा था, सो मुझे कुछ देर के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी। अपने अनिवार्य अवकाश से लाभ उठाने के लिए मैंने वहाँ पड़ी हुई कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी पत्रिकाओं को देखना आरम्भ किया। उनमें से एक में मुझे हाई ब्लड प्रेशर (उत्कट रक्तचाप) पर एक लेख मिला। मुझे उसमें इतना रस प्रतीत हुआ कि मैंने उसे आदि से अन्त तक पढ़ डाला। ज्यों-ज्यों मैं उसे पढ़ता गया त्यों-त्यों मुझे ऐसा निश्चय होता गया कि मैं उसी रोग में ग्रस्त हूँ। मैंने अपनी कल्पना द्वारा अपने आपको उसी रोग का शिकार पाया। इस बात से मेरा मन इतना उदास हो गया कि जब मेरी बारी आई तो मैं एक रोगी के समान लड़खड़ाती चाल से, डाक्टर के कमरे में गया। वह यह न समझ सका कि मुझे क्या हो गया है, क्योंकि मैं तो वहाँ केवल दाँत साफ करवाने गया था। उसने बड़ी सहानुभूति के भाव से मुझसे कुछ प्रश्न किए

और इस प्रकार से उस भेद को पा लिया जिसे बतलाने में मुझे बहुत भय प्रतीत हो रहा था। उसने मेरे भय को और बढ़ा दिया, और मुझे एक (उसके बताए) डाक्टर से सलाह-मशविरा करने की सम्मति दी। तब मैं उस डाक्टर के पास पहुंचा। उससे यह जानकर कि मुझे कोई रोग नहीं है, मेरी जान में जान आई। अब मैंने समझा कि मैं अनजाने में ही उस लेख के लेखक के जाल में फंस गया था, और अपनी कल्पना से ही मैंने अपने आप-में उस रोग के सभी लक्षण देखने आरम्भ कर दिए थे।

सम्भव है इन छोटी-छोटी पुस्तकों ने, जोकि लोगों को बचत का उपदेश देती थीं, मुझपर कुछ ऐसा ही प्रभाव डाला हो। उन्होंने मुझे यह जतला दिया कि मैं बहुत फजूलखर्च रहा हूं। यदि मैं कुछ अधिक सावधान होता तो अपने जीवन को ऐसी गड़बड़ में न डालता। यदि मैं हर महीने कुछ न कुछ बचाता तो मेरे पास रुपयों का एक ढेर लग जाता। परन्तु मैं खुले हाथों खर्च करता रहा था और मैंने कभी कमखर्ची का अभ्यास न किया था। यह सच है कि मैंने बरसों से कई बार प्रण किया था कि मैं कुछ बचत करूंगा, परन्तु, पैसा हाथ में आते ही मानो एक भूत-सा मेरे सिर पर सवार हो जाता था। जब कभी मैं कुछ पैसे कमा लेता, तभी वह उन्हें खर्च डालने की सम्मति मुझे देता। परन्तु इन पुस्तिकाओं ने मुझे अपने इस कार्यक्रम की मूर्खता से ऐसी अच्छी तरह परिचित करा दिया जैसे कि और किसी वस्तु ने पहले कभी न कराया था।

यह आश्चर्य की बात है कि इसी विषय के कुछ विज्ञापन, जिन्हें मैंने कुछ समय पहले देखा था, मुझपर कुछ प्रभाव न डाल सके और मैंने अपनी भूलों के लिए कुछ प्रायश्चित्त न किया। इनमें से एक में मैंने एक दूल्हा को एक चुस्त घोड़े पर सवार देखा। उसके आगे-आगे बैण्ड बजता जा रहा था, और उसके साथ-साथ कुछ बराती चल रहे थे। उस दृश्य से यह बताया गया था कि यह शुभ अवसर एक ऐसे ही परिवार में आ सकता है, जोकि अपना रुपया किसी बड़ी लाभदायक तमस्सुक को खरीदने में लगाता है। इसने मेरे मन में किसी प्रकार की रुचि न उत्पन्न की। लगभग दस वर्ष के बाद अपने परिवार में एक शुभ विवाह होने की आशा से मेरे चित्त में कोई उमङ्ग न पैदा हुई। इसका कारण यह था कि मैंने कई वर्ष पहले

ही यह अनुभव कर लिया था कि अपने लड़कों का विवाह करना मेरा काम नहीं है। लड़कियों की बात और है। उनके प्रति मनुष्य का एक कर्त्तव्य है—उसे उनके लिए उचित वर खोजने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु लड़कों का मामला तो इससे बिलकुल अलग है। कोई भी व्यक्ति उनको पढ़ाने व ब्याहने जैसी मुसीबतों को अपनाने के लिए तैयार न होगा। इसलिए उस विज्ञापन में मेरी कोई विशेष रुचि न थी। कुछ वाक्य इस चित्र में की गई प्रेरणा का समर्थन करते थे—वे भी मुझपर कुछ प्रभाव न डाल सके। वे एक साधारण चित्र पर की गई अनावश्यक टिप्पणी के रूप में थे।

एक और विज्ञापन जोकि मैंने देखा, यही शिक्षा देता था, यद्यपि उसकी वर्णन शैली और ढंग की थी। उसमें रेडियो, टेलीफोन, फूल और बच्चों के खिलौने आदि गृहस्थ की सुख-सामग्री का प्रदर्शन किया गया था और एक नौजवान विवाहित जोड़ी दिखाई गई थी, जिसके सामने एक टेलीफोन रखा था, और पीछे की ओर एक रेडियो। दो सुन्दर बच्चे अपने खिलौनों के साथ—निश्चिन्त रूप से—खेल रहे थे। मेरे विचार में पति-पत्नी की आयु इन बच्चों के माता-पिता होने के लिए बहुत छोटी थी, क्योंकि उन बच्चों में से एक तो अच्छी आयु का दीख पड़ता था। मैंने सोचा कि टेलीफोन तो अकेला ही किसी भी घर की शान्ति को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है, और उसके साथ यदि रेडियो मिल जाए फिर तो वहाँ अशान्ति रूपी नरक का साक्षात दर्शन हो जाए। तो इस विज्ञापन का भी मुझपर कुछ प्रभाव न पड़ा। तीसरे विज्ञापन में मैंने एक अच्छी वेशभूषा वाले नवयुवक को देखा, जोकि बहुत दुःखी प्रतीत होता था। उसके कष्ट की कहानी उसके चिन्तातुर चेहरे से स्पष्ट झलकती थी। परन्तु उसके असीम मानसिक क्लेश की व्याख्या उन शब्दों से होती थी जोकि चित्र के दाहिने हाथ के कोने में लिखे थे, "यदि मेरे पास कुछ पूँजी होती तो···।" यह स्पष्ट था कि वह नवयुवक बहुत कार्य-कुशल था, परन्तु धन के अभाव से, वह अपनी योग्यता से लाभ न उठा सकता था। कई साहसी युवकों के विषय में यही बात देखने में आती है। परन्तु उसके निराशा के भाव से मुझे बहुत खेद हुआ। मैंने सोचा कि यह चित्र निराशाजनक होने के स्थान में उत्साहवर्द्धक होता तो क्या ही अच्छा

होता ! एक और विज्ञापन में एक देहाती बंगले का चित्र बना हुआ था, जहाँ पहुँचने के लिए एक सुन्दर मार्ग बना हुआ था और जिसके चारों ओर फल-फूल वाले वृक्ष व पौधे थे। उसके कमरे बड़े-बड़े दीखते थे, और उनमें बहुत-से दरवाजे व खिड़कियाँ थीं। परन्तु वहाँ किसी प्रकार का साज-सामान न था और खाली होने से वह स्थान भयानक-सा दीख पड़ता था। इससे मेरा मन इतना व्याकुल हुआ कि मैंने उस स्थान के सम्बन्ध में सोचना ही छोड़ दिया। सच पूछो तो एक घर का उसके निवासियों के बिना विचार करना ही निरर्थक है, और चित्रकार के लिए यह उचित था कि वह इसका कुछ मनुष्यों से सम्बन्ध स्थापित कर देता। अस्तु, वह एक ऐसे भाग्यहीन घर के समान था, जहाँ कि कोई भी व्यक्ति रहना नहीं चाहता।

संभव है कि इन विज्ञापनों के प्रति मेरी भावना अनुचित रही हो—मैं उनके दोष विशेष रूप में देखता रहा हूँ और मेरी विवेचना शक्ति पक्ष-पात पूर्ण रही हो। मैं उस नवयुवक के भावों को न समझ पाया था जोकि धन के अभाव में अपनी योग्यता से लाभ न उठा सकता था। मेरा अपना घर था, इसलिए मैं उस व्यक्ति के आनन्द को अनुभव न कर सकता था, जोकि अपनी बचाई हुई पूंजी से अपना घर बनाता है। मैं स्वयं विवाह की असफलता का स्वाद चख चुका था और इस बात को समझ चुका था कि अपने बच्चों के विवाह पर खर्च करना बड़ी मूर्खता है। अतः मैं उस पिता के भावों को ग्रहण करने में असमर्थ था, जोकि अपने लड़के के विवाह को अपने परिवार की परम्परा को बनाए रखने की गारण्टी समझता है। इन तथा ऐसे ही और कारणों से मैं उन विज्ञापनों के गुणों को देखने में कोई रुचि न रखता था।

परन्तु इस बात का कोई महत्त्व न था कि मैं उन विज्ञापनों से प्रभावित न हुआ, क्योंकि इन छोटी-सी पुस्तकों ने वह काम कर दिखाया, जिसे कि वे विज्ञापन करना चाहते थे। मैंने देखा कि बहुत समय बीत जाने के बाद भी यह 'नारा' मेरे मस्तिष्क में चक्कर लगा रहा था—'कम से कम खर्च करो और अधिक से अधिक बचाओ।' मैं समझता हूँ कि यह बहुत समझदारी की बात है, और मैं इसको काम में भी लाना चाहता हूँ; परन्तु मेरे स्वभाव में प्रतिकूल दिशा में चलने की प्रवृत्ति एक अस्वाभाविक सीमा तक

बढ़ गई है। मैं सदैव वह काम करता हूँ जोकि समझदारी का नहीं होता। मैंने एक बार स्पेन के लोगों के सम्बन्ध में पढ़ा था कि वे सदैव बहुत बुद्धिमत्ता की बातें करते हैं, परन्तु उनके काम अजीब मूर्खतापूर्ण होते हैं। दुर्भाग्य से कई बातों में मैं उनसे मिलता-जुलता हूँ। मेरा रक्षक देवता मुझे बचत की शिक्षा देता है, परन्तु मेरे भीतर का असुर मुझे सदैव फ़जूलखर्ची की प्रेरणा करता है। बात ऐसी होती है कि जब मैं इन पुस्तिकाओं में दिए हुए 'नारों' को मन में दुहराता रहता हूँ, तभी मैं उनके सर्वथा प्रतिकूल काम करने में लगा रहता हूँ। मैं अधिक से अधिक खर्च करता हूँ और कम से कम बचत। सरल शब्दों में इसका भाव यह है कि मैं आवश्यकता से अधिक खर्च करता हूँ। यह एक कड़वी सचाई है कि मैं कभी-कभी ऋण में भी फँस जाता हूँ।

परन्तु यह कोई अच्छी बात नहीं है। बचत की जो शिक्षा ये पुस्तिकाएँ एवं विज्ञापन देते हैं, वह बड़ी उत्तम है। शान्तिकाल में मितव्ययिता व्यक्तिगत सुख व शान्ति की गारण्टी देती है, परन्तु समर-काल में वह एक राष्ट्रीय कर्त्तव्य का रूप धारण कर लेती है। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि संसार को कमखर्च लोगों से काफी लाभ पहुँचता है। वे कई बातों में श्रेष्ठ होते हैं। मितव्ययिता ही घरों को बनाती है, उनमें साज-सामान जुटाती है और उन्हें सुख की सामग्री से भरपूर करती है। मैं इस गुण को काम में नहीं लाता हूँ, शायद इसीलिए मैं इसके गुणों को भली प्रकार समझ पाता हूँ। धन बचाने से मनुष्य न केवल अपने जीवन को बचाता है, वरन् अपनी आत्मा को भी।

जब मैं बाबा बना ! | १२

दो दिन की अनिवार्य अनुपस्थिति के बाद जब मैंने घर में प्रवेश किया, तो मेरे मितभाषी व सड़ियल नौकर ने मुस्कराकर बड़े हर्ष के साथ कहा, "आपको बहुत-बहुत बधाई हो।" मैं कुछ घबरा-सा गया, परन्तु मेरे होश-हवास ठिकाने ही रहे। सच पूछो तो, मुझे क्षण भर में सारा मामला समझ लेना चाहिए था, परन्तु न जाने क्यों मुझे जो, सबसे अधिक स्पष्ट बात थी वही न सूझ पड़ी। मैं जड़मति नहीं तो मन्दमति अवश्य था। मैं कुछ अनमनी-सी अवस्था में ही अपने पढ़ाई के कमरे की ओर बढ़ चला। मैं अभी कुछ कदम ही आगे बढ़ा था कि मेरा सबसे छोटा लड़का, बड़ी उतावली से भागता हुआ मेरे पास आ पहुँचा, और बड़े हर्ष से चिल्लाकर बोला, "काका (बच्चा) हुआ है जी !" तब मुझे याद आया कि कुछ समय से हमारे परिवार में इस शुभ घटना की आशा की जा रही थी, और हम सब बड़ी उत्सुकता से इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यह आश्चर्य की बात थी कि मैं इस बात को बिलकुल ही भूल गया था। परन्तु अब मेरे इसे भूल जाने की कोई संभावना न थी। एक के बाद दूसरा, और दूसरे के बाद तीसरा—इस प्रकार सभी बच्चे मेरे कमरे में आ घुसे, और अपने-अपने ढंग से अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगे। एक ने लजाते हुए कहा, "काका तो बहुत ही छोटा है।" दूसरे ने शिकायत की, "वह तो सदा टीं-टीं लगाए रखता है।" तीसरे ने मधुर स्वर से कहा, "वह तो मेरी ओर बड़े प्रेम से देखता है।" लड़कियों की बातें अधिक प्रसंगानुसार थीं। एक ने कुछ डरते हुए कहा, "उसकी आँखें बहुत ही सुन्दर हैं।" दूसरी ने बड़े साहस के साथ कहा, "उसके पाँव तो बहुत ही छोटे हैं।" मैंने उनकी भोली-भाली बातों को बड़े चाव से सुना, परन्तु अपनी ओर से कुछ न कहा। मैं उस व्यक्ति के समान गंभीरता के भाव को बनाए रखना चाहता था, जिसे कि अभी-अभी 'बाबा'

का पद प्राप्त हुआ हो। उसी समय मेरी वृद्धा माता ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हर्ष का पारावार न था। उसकी तो मानो पदवृद्धि (तरक्की) हो गई थी। दादी का दर्जा पाना उसके जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, परन्तु परदादी की पदवी तो इतनी ऊँची थी कि देवता लोगों के हृदय में भी इससे ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती। अब उसे अपना जीवन सार्थक प्रतीत होने लगा—उसने ऐसा अनुभव किया कि भाग्य का देवता उस पर प्रसन्न है, और उसने उसके प्रति उदारता से काम लिया है।

परन्तु यह तो इस विषय की भूमिका ही थी। जब आनन्द की पहली लहर समाप्त हो गई, तभी एक नई समस्या उठ खड़ी हुई। मुझे कुछ उपहार बाँटने के लिए कहा गया। मेरी माता ने सबसे पहले इस बात को छेड़ा। वह मेरी प्रसन्नता के प्रमाणस्वरूप कोई बहुमूल्य वस्तु मुझसे पाना चाहती थी। फिर मेरे सभी बच्चों ने अपनी-अपनी माँगें पेश कीं। मुझे कुछ समझ न आया कि वे किस बात का इनाम चाहते हैं। वे सब कोई न कोई उपहार पाना चाहते थे। मेरी इच्छा थी कि मैं मिठाई बाँटकर उन सबकी माँगें पूरी कर दूँ, पर उन्होंने इस बात को पसन्द न किया। वे सब एकदम चिल्ला उठे, "भला मिठाई भी कोई चीज है ? मिठाई तो दादी जी ने पहले ही दिल खोलकर बाँट दी है। हमें तो कोई और कीमती चीज चाहिए। हमें तो कोई ऐसी वस्तु चाहिए, जिसे हम इस शुभ घटना के बहुमूल्य स्मारक के रूप में सँभालकर रख सकें।" मैं कुछ घबरा-सा गया। मुझे यह समझ न आया कि यह फालतू पारिवारिक टैक्स मुझ पर क्यों ठूँसा जा रहा है, और 'बाबा' बनने के सुख अथवा विशेषाधिकार के लिए मुझसे इतना भारी दण्ड क्यों लिया जा रहा है। परन्तु मुझे शीघ्र ही यह पता चल गया कि 'बाबा' लोगों को अपनी इच्छा के अनुसार काम करने का अधिकार नहीं होता। वे तो उन पराजित सेनापतियों के समान होते हैं, जिन्हें विजेताओं की सभी शर्तों को मानना पड़ता है। सो मैंने हँसी-खुशी से अपने हथियार डाल दिए, और सन्धि की शर्तों की बातचीत आरम्भ की। परन्तु वे लोग तो बिना शर्त का आत्मसमर्पण चाहते थे। मेरा सबसे छोटा लड़का सबसे तेज है, उसने बड़ी अधीरता के साथ अपनी माँग पेश की। उसने बड़ी दृढ़ता से कहा, "मैं तो एक बाइसिकल

लूँगा।" कई महीनों से मैं उसकी बात टालता आ रहा था, क्योंकि मैं जानता था कि उसे वह साधारण सवारी देना उचित नहीं। उसके उतावलेपन के कारण ही मै सदैव इस पैतृक उदारता के काम को करने में झिझक अनुभव करता रहा था। परन्तु अब पासा पलट गया था। बालक अब अपनी माँग पूरी करवा सकता था। अस्तु, मुझे हार माननी पड़ी। फिर उसके दो भाइयों ने भी वही माँग पेश की—दोनों अपने लिए एक-एक बाइसिकल चाहते थे। मैंने उन्हें बहुत कहा कि मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर लेने पर तुम्हें बाइसिकल मिल जाएँगी, परन्तु इससे कुछ लाभ न हुआ—वे अपनी बात पर डटे रहे। मेरे दूसरे लड़के ने, जोकि सैलानी तबीयत का है, मुझसे अकेले ही पहाड़ पर जाने के लिए रुपया माँगा। मैंने उससे कहा, "मै जब पहाड़ पर जाऊँगा तो तुम भी मेरे साथ चले चलना।" परन्तु उसने मेरे साथ जाना पसन्द न किया। वह क्रिया, विचार, गति व चुनाव की स्वतन्त्रता चाहता था, इसलिए उसने मेरी संरक्षता से प्राप्त होने वाली सुरक्षा की कोई परवाह न की। फिर मेरी दोनों लड़कियों की बारी आई। यह आश्चर्य की बात थी कि उन्होंने बहुमूल्य वस्त्रों व सुन्दर आभूषणों के स्थान में नकद पैसों की माँग की। दोनों ने अपने लिए एक-एक रकम बताई, जोकि बहुत छोटी थी। इससे मेरे दम में दम आया। मुझे भय था कि वे लड़कियाँ कहीं कोई असम्भव माँग न कर बैठें—कोई ऐसी वस्तु न माँग लें, जो कि मेरी शक्ति से बाहर हो। परन्तु उन्होंने कोई अनुचित बात न की।

अब तक मेरी माता चुप थी। परन्तु उसके मौन ने मेरा भय दूर न किया। मैंने तो उसे ऐसा ही भयजनक समझा, जैसे कि तूफान से पहले की शान्ति होती है। मैं जानता था कि उसकी माँगों से मैं घबरा उठूँगा। कुछ क्षण के बाद उस बुद्धिमती वृद्धा ने, जिसके चेहरे पर मुझे उन सब कष्ट-क्लेशों की छाप दीख पड़ती थी, जोकि संसार की ओर से मनुष्यों को सहने पड़ते हैं, और साथ ही वह सारी ममता जो कि स्त्रियों के ही द्वारा प्रकट होती है, अपना मौन भङ्ग किया और मुझे स्पष्ट शब्दों में कहा, "पहले चलकर बच्चे को तो देख लो; आज का दिन शुभ है।" मैंने सुख का साँस लिया। मैंने सोचा, मेरी समझदार बूढ़ी माँ थोड़े में ही मेरा छुटकारा कर देगी। वह केवल यह चाहती है कि मैं बच्चे को आशीर्वाद दूँ, और मुझे निर्धन

बनाने पर नहीं तुली हुई है। मैंने उसके प्रति अतीव कृतज्ञता का भाव अनुभव किया। इस भौतिकवादी संसार में, जहाँ कि प्रत्येक व्यक्ति वस्तुओं के मूल्य को रुपयों के रूप में आँकता है, उसने केवलमात्र एक संकेत की माँग की थी। मैं इस विचार से फूल उठा। वह मुझे एक ऐसा व्यक्ति समझती थी, जिसे कि कुछ आध्यात्मिक शक्तियाँ मिली हुई थीं, और जिसकी दृष्टि व स्पर्श से ही नवजात शिशु को कुछ अदृश्य, परन्तु बहुमूल्य पदार्थ मिल जाएगा। परन्तु मैं अपनी माता के वास्तविक भावों को न समझ सका था। उन्होंने शीघ्र ही अपने वाक्य की व्याख्या कर दी, और मुझे आज्ञा दी, "बच्चे के दाहिने हाथ की तली में एक सौ एक रुपया धर दो।" मुझे उनके प्रस्ताव को मानना ही पड़ा, क्योंकि बहस में पड़ने का कोई लाभ न था,और इनकार करने से घर में रंग में भंग पड़ने का भय था। परन्तु मुझे यह न समझ पड़ा कि इस धन से वह बच्चा क्या करेगा, और अपने छोटे-से हाथ में उसे कैसे सँभालेगा। मुझे यह बताया गया कि यह एक पुरानी परम्परा है, और इससे बच्चे का भाग्य चमकेगा। फिर यह कहा गया कि सोना दिया जाता तो अच्छा होता; परन्तु सोने के सिक्के मिलते नहीं, इसलिए मैंने नोटों से ही काम चला लिया। परन्तु यह तो उस नाटक का प्रथम अङ्क था, जिसमें मुझे 'फादर क्रिसमस'[1] का पार्ट करना था। दूसरे अङ्क का मुख्य पात्र बच्चे की माँ थी। जब मैं बच्चे के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर चुका, तो मुझे बच्चे की माता के पास, जोकि दुर्बलता के कारण बिस्तर में लेटी हुई थी, जाना पड़ा; इसलिए कि वह मुझे पालागन कर सके। उसे प्रणाम करना था, और मुझे उसे कुछ आशीर्वाद के वचन कहने थे। फिर अपनी सद्भावना प्रकट करने के लिए, मुझको उसे एक छोटी-सी धनराशि देनी थी। इस नाटक के अन्तिम अङ्क का सम्बन्ध मेरी माता से था। मुझे कहा गया कि मैं उसके पैर छूऊं और उससे आशीर्वाद लूं। फिर वह मुझसे एक सोने का

---

१. फादर क्रिसमस : बड़े दिन की पहली रात को छोटे बच्चों के माता-पिता उनके सोते-सोते उनके लिए कुछ उपहार छोटे-छोटे थैलों में डाल देते हैं। प्रातः उठने पर बच्चे उन्हें पाकर बहुत खुश होते हैं, तो उन्हें कहा जाता है कि फादर क्रिसमस (एक काल्पनिक पुरुष) वह उपहार दे गया है।

आभूषण पाने की आशा करेगी। अब तक तो मैं शान्ति से सब कुछ सुन रहा था, परन्तु सोने का नाम सुनते ही मैं भयभीत हो गया, यद्यपि कल शाम को ही मेरे एक मित्र ने मुझे यह सूचना दी थी कि सोने का भाव गिर गया है। मैंने यह समझ लिया कि इस प्रस्ताव का विरोध करना निष्फल है, और इन माँगों में कमी करवाने की आशा भी व्यर्थ है। इतनी देर तक साहसपूर्वक सबका मुकाबला करने के पश्चात् किसी प्रकार की घबराहट या भय का भाव जतलाना मेरे लिए बहुत मूर्खता होती, और मैंने किसी ननुनच के बिना ही उनका कहना मान लिया।

इस नाटक के पहले अङ्क का सूत्रपात मेरी पूज्या जननी के द्वारा हुआ, जोकि पारिवारिक रंगमंच की कुशल सूत्रधार थी। 'बाबा' जिसे बहुत धनवान् समझा जा रहा था, स्थिर व गम्भीर गति से बरामदे की ओर चला, जहाँ कि परिवार के सभी व्यक्ति इस नाटक को देखने के लिए पहले से ही इकट्ठे हुए थे। आज्ञाकारी 'बाबा' ने, जो कि अपने आपको 'शा' के किसी नाटक का पात्र अनुभव कर रहा था, श्रद्धा के बिना ही प्रसन्नता-पूर्वक सभी रस्मों को पूरा किया। उस दिन उसे, सदा की अपेक्षा, इस बात का अधिक अनुभव हुआ कि मैं माता के इशारे पर नाचने वाली कठपुतली से अधिक कुछ नहीं हूँ। उस समय वह न तो अपने अन्तरात्मा का स्वामी था, न ही अपनी इच्छा का—वह तो एक तिनका था जो कि पारिवारिक भक्ति व पुत्रस्नेहरूपी कर्त्तव्य की लहरों के साथ बहा जा रहा था। परन्तु जब उसने क्षण भर के लिए बच्चे को देखा तो उसके हृदय में आनन्द की लहर दौड़ गई। बच्चा सुन्दर व छोटा-सा था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बच्चा बलिष्ठ व हृष्ट-पुष्ट था। वह अपने हाथ-पाँव नहीं चला रहा था। चुपचाप शान्तचित्त होकर पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसने इस लोक के साथ अपना प्रेम सम्बन्ध बना लिया है—उसकी मनोवृत्ति अपनी परिस्थिति से सन्तुष्ट रहने की थी। उसने तो मानो अपनी परिस्थिति से अपरिचित होने से उत्पन्न होने वाले निराशा के भाव पर अधिकार पाकर उसके साथ अपना मित्रभाव स्थापित कर लिया था। यह उसके लिए एक शुभ शकुन था कि वह इस संसार की व्यवस्था में उचित स्थान पा लेगा। 'बाबा' ने अनुभव किया कि बच्चा एक सुखी मनुष्य बनेगा। वह अपनी

परिस्थिति को बदले बिना ही, उससे पूरा-पूरा लाभ उठाएगा। 'बाबा' के ये विचार शायद असामयिक थे, परन्तु वह ऐसा सोचे बिना रह न सकता था।

कितने आश्चर्य की बात है कि मुझे अभी तक यह न सूझ पड़ा था कि मैं बच्चे के पिता के मनोभावों को समझने का यत्न करूँ ! परन्तु यह कैसे हो सकता था जबकि बच्चे के पिता ने तो मानो मेरे सम्मुख आने की कसम खा रखी थी। वह तो घर में यथासंभव बहुत ही कम दीख पड़ता था। मैंने अपने आपसे पूछा, 'भला, यह कौन-सी श्रेणी का पिता है--अभिमानी, कृतज्ञ अथवा लज्जाशील ?' मुझे अपने एक मित्र की याद आई, जिसे अपने पहले बच्चे के जन्म पर इतनी प्रसन्नता हुई थी कि वह अपने सभी मित्रों को इस शुभ घटना की सूचना देता फिरता था। कोई भी प्रतिष्ठित योद्धा अपने पदकों (तमगों) को इतने आडम्बर से न दिखाता होगा, जितना कि वह भलेमानस अपने बच्चे के सम्बन्ध में प्रकट करता था। वह लोगों को यह जताना चाहता था कि अपनी सफलता पर उसे बधाई मिलनी चाहिए। उस दिन से उसकी बातचीत का मुख्य विषय वह बच्चा ही होता था, जिससे सुननेवाले का मन ऊब जाता था। हाँ, कुछ माता-पिता ऐसे भी होते हैं, जोकि पुत्रजन्म के शुभ अवसर पर कृतज्ञता का प्रदर्शन करते हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि इस वरदान के लिए वे मनुष्य जाति और विशेषतया परमेश्वर के ऋणी हैं। वे पुत्रजन्म को एक सुखदायक दैवी घटना—ईश्वर की एक आकस्मिक देन—के रूप में देखते हैं। उनके विचार में बच्चों की एक 'कमी की कीमत' होती है, और वे इस बहुमूल्य सम्पत्ति को पाकर अपने आपको बहुत ही भाग्यवान समझते हैं। ऐसे माता-पिता मानव-प्रकृति की अच्छाई में हमारे विश्वास को दृढ़ करते हैं। लज्जाशील पिता इनसे सर्वथा भिन्न होता है। जब कभी इस बात की चर्चा होती है, वह लज्जा के मारे इधर-उधर छिपता फिरता है। जब वह अपने किसी घनिष्ठ मित्र से इसके सम्बन्ध में बात भी करता है तो बड़े धीमे स्वर में। अभिमानी पिता के समान वह कोठे पर चढ़कर, इस बात की घोषणा नहीं करता, और न ही कृतज्ञ पिता के समान किसी देवता के आगे भेंट धरता है। वह इस विषय में गम्भीरतापूर्ण मौन धारण किए रहता है, और इस

सूचना को अपने मित्रों व सम्बन्धियों तक अप्रत्यक्ष रूप में पहुँचने देता है। यह कहना कि वह इस बात से लज्जित होता है, एक प्रकार की अतिशयोक्ति होगी; परन्तु यह कहना भी असंगत होगा कि वह इसे एक साधारण घटना के रूप में देखता है। मैं यह न समझ सका कि मेरा लड़का किस श्रेणी से सम्बन्ध रखता है। उसके लिए तो शायद इतना ही समझ लेना काफी था कि वह एक सुखी पिता है।

मैं स्वयं एक लज्जाशील 'बाबा' हूँ। उत्सुकता का प्रथम आवेग अब समाप्त हो चुका है, और उत्तेजनापूर्ण आनन्द का युग भी बीत गया है। अब जब मैं इस बात को सोचता हूँ तो मुझे यह प्रतीत होता है कि इस बात में अभि-मान करने का कोई कारण ही नहीं है। वास्तव में यह मेरे लिए कोई अनोखी बात न थी। मुझमें कृतज्ञता का भाव भी विशेष रूप में नहीं है। बच्चे का तो अभी अपनी उपयोगिता का प्रमाण देना है। यदि वह मेरी आशाओं को सफल करेगा, तो मेरे लिए कृतज्ञता अनुभव करना उचित होगा। परन्तु वह तो दूर की बात है। अभी तो मैं इस विषय में लज्जाशील ही हूँ। यह शायद इसलिए है कि मैंने इस विषय में समाचारपत्रों में कुछ पढ़ा है। गांधी जी ने एक नवविवाहित जोड़े को आशीर्वाद देते हुए कहा था, "जहाँ तक हो सके संसार में दासों की वृद्धि करने से बचो।" यह वाक्य पढ़कर मैं गांधी जी की बुद्धिमत्ता पर मोहित हो गया। उन्होंने अपने उपदेश के साथ अंग्रेजी भाषा के 'जहाँ तक हो सके' इस सुन्दर वाक्यांश को विशेषण रूप में जोड़ दिया था। अंग्रेजी भाषा की पुष्कल शब्दावलि में मुझे कोई भी वस्तु इतनी अधिक नहीं रुचती जितना कि ये चार साधारण-से शब्द। ये शब्द किसी भी वस्तु को उचित प्रमाणित कर सकते हैं, क्योंकि इनसे हम मनुष्य के सम्बन्ध में दयालुतापूर्ण भाव बना सकते हैं। महात्मा जी ने अपने आदेश को सीमित कर दिया था, क्योंकि वे इस बात को भली भाँति जानते थे कि जीवन शास्त्र के सिद्धान्त आचारशास्त्रियों की धर्म संहिताओं की अपेक्षा अधिक प्रबल हैं। परन्तु मेरी लज्जाशीलता का यह वास्तविक कारण न था। इसका सम्बन्ध तो, मेरी अपेक्षा बच्चे के बाप से अधिक है। मैं जानता हूँ कि मेरी भीरुता का कारण कुछ और था। पोते का जन्म मुझे इस बात की याद दिलाता है कि मैं अब बूढ़ा हो चला हूँ, और मेरा यौवन

अब केवल भूतकाल की वस्तु हो गया है। मैं अब शीघ्रता से एक पुराने ढर्रे का आदमी बनता जा रहा हूँ। मैं अब प्रसन्नचित्त युवक अथवा गम्भीर प्रकृति का प्रौढ़ नहीं रहा, मैं तो अब एक दुर्बल शरीर वाला बूढ़ा हूँ। मेरी माता के अभिमान के कुछ और ही कारण हैं। उसे इस बात में अपने भाग्य की सफलता प्रतीत होती है, परन्तु मैं तो एक अधिक उत्तरदायित्व के बोझ के नीचे दबा जा रहा हूँ।

क्लब | १३

मेरा एक मित्र मुझे एक कस्बे में ले गया, जहाँ कि उसे अपने एक पुराने सहपाठी से मिलना था। यह एक प्रकार से भावुकतामय भेंट थी। एक समय इन दोनों सज्जनों में बड़ी घनिष्ठता थी, परन्तु अब कुछ काल से उनकी मित्रता की गाँठ ढीली पड़ गई थी—किसी भ्रममूलक मतभेद के कारण नही, वरन् इसलिए कि उनमें से एक का ठिकाना उस कस्बे से कम से कम १२०० मील की दूरी पर था। यह सच है कि वह साल में एक-दो बार उस कस्बे में पहुँचता था, जहाँ कि मै रहता था, परन्तु वह वहाँ अधिक देर न ठहरता था। उस छोटे-से शहर में पहुँचकर अपने पुराने सहपाठी से अपनी मित्रता को पुनर्जीवित करना उसे सुगम न प्रतीत होता था। परन्तु उसने उसे भुलाया न था। वह उसके सम्बन्ध में सदैव मुझसे पूछताछ किया करता था। उसे यह सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई कि उसके मित्र की आर्थिक दशा अच्छी है। उसके बच्चे बड़ी आयु के हो रहे हैं और वह उनके भविष्य को बनाने में अच्छी दिलचस्पी ले रहा है। उसने अपना एक शानदार मकान बना लिया है, और उसे अपने मित्रों को दिखाने में अपना गौरव समझता है।

वह घर वास्तव में एक विलक्षण घर था। यह बड़े आश्चर्य की बात थी कि उस भद्रपुरुष ने कैसी चतुराई से इतने थोड़े स्थान में और इतने थोड़े खर्च से अपनी सभी आवश्यकताओं व विशेष रुचियों को पूरा कर लिया था। उस भद्र-पुरुष की आधुनिक रुचि के अनुकूल वहाँ बहुत कुछ था, और उसकी पुराने फैशन की स्त्री को प्रसन्न करने के लिए भी कुछ थोड़ा प्रबन्ध था। वह कुत्तों का बहुत शौकीन था, और उसने अपने घर में उनके आराम का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर रखा था। उसकी पत्नी को गौओं से विशेष स्नेह था और बिल्ली, चिड़िया और तोते आदि पालतू प्राणियों में भी रुचि थी। उस भद्रपुरुष ने उन सबके

रहन-सहन का प्रबन्ध करके अपनी चतुराई का प्रमाण दिया था। उसका विश्वास था कि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को पूरा-पूरा एकान्त मिलना चाहिए। अपना घर बनाते समय उसने इस बात का पूरा ध्यान रखा था। उसने अपने प्रत्येक बच्चे के लिए ऐसे ढंग से अलग-अलग ठिकाने का प्रबन्ध किया था कि जिससे एक दूसरे की गतिविधि में किसी प्रकार की रुकावट न पड़े। घर का वह भाग तो एक बोर्डिंग हाउस (छात्रावास) के समान प्रतीत होता था। उसकी अतिथिशाला उस बिल्डिंग के मध्य भाग में थी, और सभी रास्ते वहाँ आकर मिलते थे। उसका यह एक विशेष मन्तव्य था कि अतिथि के साथ परिवार के एक व्यक्ति के समान ही संकोचरहित व घनिष्ठतापूर्ण व्यवहार होना चाहिए, और परिवार के सभी सदस्यों को उससे मिलने-मिलाने की सुविधा होनी चाहिए। उसके मत में अतिथि बड़े सौभाग्य से मिलता है, इसलिए उसके श्रेष्ठ प्रभाव से सबको लाभ उठाना चाहिए। इस बात का कोई महत्त्व नहीं था कि अतिथि किस प्रकार का व्यक्ति है। घर में अतिथि रूप से आते ही उसे अनेक बहुमूल्य विशेष अधिकार मिल जाते थे। उसे परिवार में पवित्रता का प्रतीक माना जाता था। घर में एक कमरा पूजा-पाठ के लिए अलग रखा गया था, और परिवार के प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह प्रतिदिन अपना कुछ न कुछ समय वहाँ बिताएगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपने ढंग से पूजा-पाठ करने की पूरी स्वतन्त्रता थी, परन्तु भजन-पाठ सबके लिए अनिवार्य था।

यह कमरा एक देवालय के समान था। यहाँ धार्मिक ग्रन्थों और चित्रों का विचित्र संग्रह था। 'मार्कस आरेलियस के विचार' के पास ही गीता रखी हुई थी, और सिक्खों के पवित्र ग्रंथ के पास ही लेनिन के लेख पड़े थे। दीवारों पर लटके हुए चित्र भी विचित्र व विविध प्रकार के थे। भगवान् कृष्ण के चित्र के साथ ही स्टालिन का चित्र टँगा हुआ था। महात्मा गांधी का एक बड़ा फोटो दीवार की शोभा को बढ़ा रहा था, और उसके साथ ही दो सिनेमा के प्रसिद्ध पात्रों के चित्र सजे हुए थे। ऐसी बेढंगी सजावट पर हँसी आए बिना न रहती थी। देवी-देवताओं, धार्मिक व्यक्तियों, सन्त-महात्माओं के चित्रों की वहाँ उपस्थिति तो उचित ही थी, परन्तु

राजनीतिज्ञों व सिनेमा के प्रमुख पात्रों का वहाँ होना कुछ असंगत-सा प्रतीत होता था। इसी तरह धार्मिक पुस्तकों का वहाँ होना तो युक्तिसंगत था, परन्तु क्रान्तिकारियों की कृतियों की वहाँ उपस्थिति कुछ अनुचित-सी जान पड़ती थी। परन्तु उस सज्जन का पूजा-पाठ के सम्बन्ध में अपना निराला ही मत था। 'कोई भी पुस्तक अथवा मनुष्य, जो कि हमारी आत्मिक उन्नति में सहायक होता है, हमारे लिए पूजा का पात्र है।' प्रत्येक पुस्तक, जो कि किसी व्यक्ति को जीवन का मार्ग दिखाती है, पवित्र है। इस दृष्टि से गीता उस व्यक्ति के लिए पवित्र हो सकती है, जोकि अपने जीवन को उसके उपदेशों के अनुसार चलाना चाहता है। परन्तु यह समझ नहीं आता कि किसी क्रान्तिकारी की कृति को ऐसी पवित्रता कैसे प्राप्त हो सकती है। परन्तु वह यह युक्ति देता था कि उन्होंने भी तो जीवन-निर्वाह के एक नये ढंग की शिक्षा दी थी। उन्होंने यह बताया था कि मनुष्य को व्यक्तिगत और सामाजिक रूप में कैसे जीवन-निर्वाह करना चाहिए। सच पूछो तो, उसके मत में इनमें से कुछ क्रान्तिकारियों ने पुराने सड़े-गले धर्मों की अपेक्षा अधिक व्यक्तियों के जीवन में परिवर्तन ला दिया है। परन्तु यह बात तो फिर भी नहीं समझ में आती कि सन्त-महात्माओं के साथ सिनेमा के प्रमुख पात्रों को कैसे स्थान मिला। परन्तु वह इस विरोधाभास की भी व्याख्या कर सकता था। उसका कहना था कि सभी प्रकार की पूजा अथवा आराधना एक प्रकार की महत्त्वाकांक्षा—अपने आपको उन्नत करने की उत्कट अभिलाषा है। यदि एक व्यक्ति एक सिनेमा के अभिनेता के समान बनना चाहता है, तो वह एक प्रकार से उसकी पूजा कर रहा है। वह सिनेमा का लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति उसके लिए एक देवता के समान है, और उसकी पूजा का उतना ही अधिकारी है, जितना कि कोई और व्यक्ति। उस भद्रपुरुष के ये कुछ विशेष मन्तव्य थे। साधारणतया वह एक रोचक व आकर्षक स्वभाव का व्यक्ति था।

परन्तु उसे मेरे विरुद्ध एक शिकायत थी। उसके विचार में मैं उसके व उसके पुराने सहपाठी के बीच में एक दीवार के समान आ खड़ा हुआ था और मैंने उसके सारे स्नेह को समेट लिया था—मैं मैकियावली के समान धूर्त था, और उनमें फूट डालने की गहरी चाल चल रहा था। वह

कभी-कभी मेरे सामने ही अपने इन सन्देहात्मक भावों को प्रकट कर देता था। फिर मुझे भी ऐसा प्रतीत होने लगा था कि शायद मुझसे कुछ अपराध हो गया है। परन्तु, सदा सन्देह का पात्र बने रहना भी तो कोई सराहनीय बात नहीं है। मुझे इस बात का बहुत दुःख था कि इस विषय में मेरी स्थिति को भली प्रकार न समझा गया था। अब मैंने उनके बीच में शान्ति स्थापन करने का बीड़ा उठाया, और अपने मित्र के साथ इस कस्बे में इस भद्रपुरुष से भेंट करने को चला आया।

हम अभी उसके घर पर पहुँचे ही थे कि उसने कहा, "आओ, एक प्याला चाय पिएँ। फिर हम क्लब को चलेंगे—वहाँ आज रात को एक शानदार डिनर होगा।" मेरे मित्र को क्लब का जीवन बहुत पसन्द है। मेरी इच्छा वहाँ जाने की न थी, परन्तु मैंने ऐसा अनुभव किया कि और कोई प्रस्ताव उनके आगे रखना सर्वथा निष्फल होगा, मैंने चुपचाप उनकी बात मान ली।

अस्तु, हम चाय पीने बैठे। वह एक अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन के समान थी, जिसमें से संयुक्तराष्ट्रों के स्थायी मेल-मिलाप की सोंधी सुगन्ध आ रही थी। अमेरिकन आइसक्रीम स्वादिष्टता में अंग्रेजी सैण्डविच से टक्कर ले रही थी, और चीनी ढंग से बनाया हुआ पकवान एक रूसी मिठाई से समता कर रहा था। देशी मिठाइयों की तो संख्या भी इतनी अधिक थी कि उनकी गिनती करने में ही बहुत-सा समय लग जाता। बहुत-सी मिठाइयाँ, जो कि हमारे आगे रखी गईं, घर की बनी हुई थीं। हमें तो निरन्तर आवश्यकता से अधिक खा जाने का भय लगा रहा।

जब हम चाय पी रहे थे, तो दो सज्जन वहाँ पधारे। वे बड़े मिलनसार व्यक्ति थे, और कहीं भी बिना संकोच के रह सकते थे—उनमें मित्र बनाने का स्वाभाविक गुण था। मैंने यह अनुमान लगाने का यत्न किया कि वे कौन लोग हैं। यह तो स्पष्ट था कि वे अंग्रेज न थे। मैंने सोचा, शायद वे अमेरिकन हों। क्षण भर के बाद उन्होंने स्वयं कहा, "हम आस्ट्रेलियन हैं।" उन्होंने इस बात को बार-बार दुहराया कि आस्ट्रेलिया इङ्गलैण्ड की अपेक्षा अमेरिका से अधिक समानता रखता है। यह बात कई प्रकार से उत्साहजनक सिद्ध हुई। अब मैं इस बात का अनुमान लगाने का यत्न करने लगा

कि उनके जीवन-निर्वाह का साधन क्या है । वे सेना में तो कदापि न थे, परन्तु वे व्यापारी बनने के योग्य भी न प्रतीत होते थे। मुझे कुछ धुंधला-सा सन्देह हुआ कि वे एक प्रकार के मिशनरी या धर्मप्रचारक हैं; परन्तु मेरे इस सन्देह को दूर करने का कोई साधन न मिला। अस्तु, कोई भी व्यक्ति यह सोचे बिना न रह सकता था कि आस्ट्रेलियन लोग अवश्य ही लोकप्रिय होंगे, क्योंकि उनमें वे गुण थे, जो कि मनुष्यों के परस्पर मेल-मिलाप को एक सुखदायक अनुभव बना देते हैं।

जब हम चाय पी चुके, तो हमें क्लब में जाने का न्योता दिया गया। मेरी वहाँ जाने की इच्छा न थी, और मैंने वहाँ मौज-मेले में भाग लेने के विरुद्ध कई शिष्ट संकेत भी किए, परन्तु मेरी एक न सुनी गई। मैंने तो यहाँ तक कह दिया कि 'मेरी तबीयत ठीक नहीं है', परन्तु इस बहाने को भी स्वीकार न किया गया। मुझे बहुत आग्रहपूर्वक कहा गया, "इस क्लब में जाने से तुम्हारी तबियत ठीक हो जाएगी।" मैंने कहा, "मुझे बाजार में जाकर कुछ वस्तुएँ खरीदनी हैं।" परन्तु इसका भी उनपर कुछ प्रभाव न पड़ा। खैर, हम सबने क्लब की राह ली।

मैं यह मानता हूँ कि क्लब बड़े अच्छे ठिकाने पर बनी हुई थी। वह एक पुराने बाग़ में थी, जिसे कि पिछली शताब्दी के मध्य भाग में बनाया गया था। कुछ समय से उसे आधुनिक ढाँचे में ढाला गया था, परन्तु अब भी उसमें से प्राचीन काल के अनोखेपन की गंध आती थी। क्लब की बिल्डिंग की छत नीची थी, और उसका रूप-रंग विशेष प्रभावशाली न था, परन्तु छत का भीतरी भाग सुन्दर था। वह लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों से बना हुआ था, और रंग-बिरंगी रजाई के समान दीख पड़ता था। यह सच है कि उसका रंग धुँधला पड़ गया था, परन्तु रंगों का परस्पर मेल अब भी आकर्षक था। सुन्दर व विस्तृत हरी-हरी ग्राउण्डों की तुलना में क्लब की बिल्डिंग बड़ी भद्दी-सी लगती थी। वहाँ एक ऊँचा-सा थड़ा था, जिसपर बिजली के पंखे लगे हुए थे। वे निरन्तर घर्र-घर्र शब्द कर रहे थे। वहाँ छोटे-छोटे मेज़ पड़े थे, और उनके पास ऐसी कुर्सियाँ रखी हुई थीं, जोकि आफिस-चेयर व आर्मचेयर के नमूनों को मिलाकर बनाई गई थीं। पास ही एक शैड था, जहाँ से वनस्पति घी में तली जाती हुई वस्तुओं की बुरी-सी

गंध आ रही थी। एक जंगलेदार मेज़ पर बहुत-सी बोतलें व गिलास सजे हुए थे, और आधी दर्जन के लगभग बैरे वर्दी पहने हुए वहाँ इधर-उधर आ-जा रहे थे। वायु शीतल व सुखप्रद था, और तेज प्रकाश वाले बिजली के लैम्प चन्द्रमा के उस धुँधले प्रकाश की तुलना में, जोकि हरी घास की ग्राउण्ड पर मृदुलता से छाया हुआ था, ढिठाई-सी करते हुए प्रतीत होते थे।

उन बोतलों के लेबलों पर साधारण दृष्टि डालने से ही कोई भी व्यक्ति इस निर्णय पर पहुँच सकता था कि क्लब के मेम्बर आधुनिक अर्थों में समय को आनन्दपूर्वक बिताने में विश्वास करते थे। वे सभी दिल खोलकर पीने वाले वहाँ इसी विश्वास को लेकर आते थे कि जीवन का रस मदिरा-पान से कई गुना बढ़ जाता है। वे बिना किसी संकोच के दिल खोलकर शराब पीते थे। एक और शौक जो वे पूरा करते थे, वह था ताश खेलना। रमी के समान जूए के सभी खेलों को वे बड़े-बड़े दाव लगाकर खेलते थे। मेरे यजमान ने कहा, "यहाँ तो सायंकाल भर में ही सैकड़ों के वारे-न्यारे हो जाते हैं।" परन्तु मेम्बर लोग इतना जीतने के विचार से न खेलते थे, जितना कि मनोविनोद के लिए। वे तो वहाँ समय को नष्ट करने के लिए आते थे, न कि अपनी चतुराई की परीक्षा के लिए अथवा भाग्यदेवता को सन्तुष्ट करने के लिए। कभी-कभी वे डिनर का प्रबन्ध कर लेते थे। ऐसे अवसरों पर दाव, साधारण की अपेक्षा, बहुत बढ़े-चढ़े होते थे। शराब का दौर खूब चलता था, और मेम्बर लोग देर तक वहाँ बैठे रहते थे।

जिस रात को हम वहाँ पहुँचे, वह ऐसी ही उत्सव या राग-रंग की रात थी। प्रत्येक व्यक्ति बड़ी उमंग के साथ खेल रहा था, दिल खोलकर शराब पी रहा था और जोश में आकर चिल्ला रहा था। जब बहुत देर के बाद डिनर आरम्भ हुआ तो प्रत्येक व्यक्ति ने पेट भरकर खाया। इसका परिणाम यह हुआ कि सूप (शोरबा) के सिवाय प्रायः सभी वस्तुएँ कम हो गईं। इस पर जो प्रतिवाद के शब्द सुने गए वे किसी बुरी भावना से नहीं कहे गए थे, वरन् उनमें दिल्लगी का अंश था। कुछ मौखिक भाषण हुए, जो अतीव हास्यरसपूर्ण थे। उनमें असंगति और तारतम्य के अभाव की अधिकता थी।

परन्तु मैं और मेरा मित्र उस हँसी-ठट्ठे में भाग न ले सके। हम खेलने-खिलाने व पीने-पिलाने में सम्मिलत न हुए। शोर मचाने की तो हममें शक्ति

ही न थी। हमारे यजमान ने क्षमा याचना करते हुए कहा, "मुझे इस बात का दुःख है कि तुम लोगों को कोई आमोद-प्रमोद का साधन नहीं मिला।" सच पूछो तो, यह उसकी भूल थी। हमें तो मानव स्वभाव के आन्तरिक अनुशीलन में ही अपूर्व आनन्द अनुभव हो रहा था। उस नगर के शिष्ट समाज के मुखियों की गतिविधि को देखना ही हमारे लिए एक अतीव सुखदायक अनुभव था। इन भद्रपुरुषों को आमोद-प्रमोद में लगे देखकर किसी भी व्यक्ति को स्वतः ही यह ज्ञान हो जाता था कि वर्तमान युग का मनुष्य अपने दैनिक नीरस कार्यक्रम से कभी-कभी छुटकारा पाने की आवश्यकता अनुभव करता है। वह एक प्रकार से कभी-कभी अपने आपको पूरी छुट्टी देना चाहता है। यह एक ऐसा ही अवसर था। ये लोग इसी ढंग से अपनी चिन्ता को दूर करते थे। इनका आदर्श वाक्य था—'खूब पियो, खूब खेलो, और खूब शोर मचाओ।' वे ऐसा कर सकते थे, और वे ऐसा करते भी थे। मैंने अपने आपसे पूछा, 'क्या इनके लिए मौज मनाने का और कोई ढंग नहीं है?'

आटोग्राफ* | १४

अभी कुछ समय हुआ कि मैं एक देसी रियासत की राजधानी में एक अखिल भारतीय सम्मेलन पर गया। यह अपने ढंग की पहली कान्फ्रेंस थी, और इसमें सभी वर्गों के प्रतिनिधि विद्यमान थे। यह भारतीय जीवन की सुन्दर विविधता का स्पष्ट प्रदर्शन था। मैंने कुछ भारतीय भाषाओं को स्थानीय लोगों के मुख से पहली बार सुना था। इतने वर्षों तक मुझे उनके अस्तित्व का कुछ धुँधला-सा ही ज्ञान रहा था, परन्तु अब वे मेरे लिए सजीव हो उठीं। यह अनुभव मेरे लिए अतीव लाभदायक सिद्ध हुआ। उनकी बात को समझे बिना भी मुझपर जादू का-सा प्रभाव पड़ा। मैं एक ऐसे विद्यार्थी के समान था, जोकि किसी बड़े नगर में जाता है, और वहाँ के सभी दर्शनीय स्थानों को देखकर लौटता है। तो उनके सम्बन्ध में शेखी बघारने लगता है। संभव है कि उसने उन स्थानों के महत्त्व को न समझा हो और उनका जो प्रभाव उसके मन पर पड़ा था, वह केवल यान्त्रिक ही रहा हो, फिर भी उसके लिए वहाँ हो आना ही लाभदायक रहा होगा। अब भी मैं एक भाषा से दूसरी भाषा के अन्तर को नहीं पहचानता, परन्तु मेरे लिए इतना ही पर्याप्त था कि मैंने उन्हें उन लोगों के मुख से सुना, जिन्होंने कि उनके पढ़ने-पढ़ाने में अपना सारा जीवन लगा दिया था। उन उत्साही व्यक्तियों के भाषणों को सुनने से ही मुझे बहुत लाभ हुआ। मैं अब भारत के किसी भी भाग में एक सार्वजनिक सभा में खड़ा होकर पूरी दियानतदारी के साथ कह सकता हूँ कि मैंने आसामी, मैथिली, तेलगू व

---

*आटोग्राफ (स्वहस्तलिखित लेख) : किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के हस्ताक्षर लोग अपनी डायरी अथवा एलबम में इस विचार से करवाते हैं कि विशेष अवसर व उस व्यक्ति की स्मृति बनी रहे।

कन्नड़ भाषाओं को बोले जाते हुए सुना है। मुझमें अब भी स्कूल के छात्रों के स्वभाव का कुछ अंश है, और मैं अपने श्रोताओं में से किसी को कभी यह चैलेञ्ज दे सकता हूँ कि वह ऐसी शानदार सफलता का प्रमाण दे।

मेरे एक मित्र ने निराशाभरे स्वर में कहा, "यह क्या भाषाओं का गड़बड़ घुटाला है?" मैं इस बात में उससे सहमत न था, परन्तु मैंने बहस में पड़ना ठीक न समझा। मन ही मन मैं उससे घृणा करने लगा। यह व्यक्ति, जिसे अपने आप पर इतना अभिमान था, केवलमात्र ऊपरी बातों को जानता था—वह भीतर की बातों की ओर ध्यान न देता था। वह ऐसी बात से उकता गया था, जोकि उसके लिए अतीव आह्लादजनक सिद्ध हो सकती थी। उसे एक ऐसे नवजीवन के स्पन्दन का ज्ञान न था, जिसका कि यह सम्मेलन एक अकाट्य प्रमाण था। यह ठीक है कि उस परिस्थिति में कई ऐसी बातें थीं, जिन्हें कि एक व्यक्ति पसन्द न करता। परन्तु उसमें जीवन था, यद्यपि अस्त-व्यस्त अवस्था में। वहाँ उत्साह था, यद्यपि वह अपने आपको अनेक ढंग से, भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकट करता था। उन लोगों ने कुछ करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था—यद्यपि उनके उद्देश्य और मार्ग पृथक थे। उदासीनता का स्थान क्रियाशीलता ले रही थी और जीवन के प्रवाहरहित सरोवर में हलचल-सी मच रही थी। इन सब बातों ने मेरे चित्त को पर्याप्त रूप में सान्त्वना दी।

परन्तु एक ऐसी बात थी, जिसका मुझे कोई कारण न जान पड़ता था। मैं यह नहीं कह सकता कि उससे मुझे घृणा हुई। सच पूछो तो, उसने मुझे दुविधा में डाल दिया। सम्मेलन की प्रत्येक बैठक के बाद, मैं देखता कि बहुत-से नवयुवक प्रमुख व्यक्तियों को घेर लेते थे। मैंने इस भीड़ को ध्यान से देखा, और मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि ऐसी भीड़ सचमुच इस बात की सूचना देती थी कि एक व्यक्ति कहाँ तक जनता के हाथों सम्मान पाता है। इससे मुझे यह पता चलता था कि एक व्यक्ति कहाँ तक जनता को प्रभावित करता है और उसका प्रीतिभाजन होता है। मैं यह बात स्पष्टतया जान सकता था कि वक्ता ने अपने श्रोताओं पर कितना प्रभाव डाला है। मैं किसी भी व्यक्ति को झटपट उसके उचित महत्त्व के अनुसार स्थान दे सकता था। मुझे यह ज्ञान हुआ कि वक्ताओं को चार श्रेणियों में बाँटा जा

सकता है। कुछ व्यक्ति ऐसे थे, जिन्हें कि हम नक्षत्र-समूह कह सकते हैं, और कुछ ऐसे, जिन्हें कि नक्षत्र कह सकते हैं। फिर कुछ साधारण स्थिति के लोग थे, और अन्त में वे बहुसंख्यक लोग थे, जोकि इस जमघट के मूल आधार थे।

कहीं ऐसा न हो कि लोग यह समझें कि मैं पहली तीन श्रेणियों के लोगों में अपनी गिनती करवाना चाहता हूँ। इसलिए मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं साधारण लोगों में से ही था। मेरी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया, न ही मैंने किसी का ध्यान अपनी ओर खींचने का यत्न किया। यह बात न थी कि मेरे लिए ऐसा करने का अवसर न था, परन्तु मेरी कुछ कहने की इच्छा ही न थी। जब मैंने कान्फ्रेंस के प्रोग्राम पर दृष्टि डाली, तो मुझे कई नामों की सूची दीख पड़ी। मैंने सोचा कि यह इस नाटक के पात्रों की नामावलि है। सम्मेलन के प्रबन्धकों ने इन नामों को बड़ी सावधानी से चुना था, और उनमें से प्रत्येक को कोई न कोई पार्ट दे दिया था। यह शोक की बात थी कि मुझे किसी भी, छोटे या बड़े, पार्ट के योग्य न समझा गया था। और भी बहुत-से ऐसे व्यक्ति थे जिनके नाम प्रोग्राम में न थे, परन्तु वे चुपचाप बैठने वाले न थे। वे अपने भावों को प्रकट करने के लिए कोई न कोई अवसर निकाल लेते थे। जब कभी उन्हें मौका मिलता, वे अपना नाम लिखकर भेज देते और उन्हें स्टेज पर बुला लिया जाता। अपना लेक्चर झाड़कर वे बहुत प्रसन्न होते थे। कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे जो कि अपनी बुद्धिमानी से अपने लिए ठिकाना बना लेते थे। वे किसी न किसी विषय पर व्याख्यान देकर जनता का ध्यान अपनी ओर खींच लेते थे। मैं यह बिना संकोच के कह सकता हूँ कि मैंने किसी ऐसे उपाय का प्रयोग नहीं किया। 'फालतू' कहलाने से मेरे आत्मसम्मान के भाव को ठेस लगती थी, और किसी अनुचित उपाय से अपना काम बनाने में मेरा आलस्य बाधा डालता था। मैं चुपचाप उनकी बातों को सुनता, उनकी चेष्टाओं को देखता, और इस-से अपने मन को बहलाता था।

इस अवस्था के कुछ विशेष लाभ थे। मुझे कई बातों का पता चला और मैंने उन्हें भविष्य में प्रयोग करने के लिए अपने मन में सँभाल कर रख लिया। उदाहरण के लिए मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि 'प्रमुख व्यक्ति' वे होते हैं,

जिनके सम्बन्ध में जनता प्राय: अपनी विवेकशक्ति से काम नहीं लेती। एक व्यक्ति जोकि एक बार प्रसिद्ध हो जाता है, जीवन भर वैसा ही रह सकता है, यदि वह अपने आपको पूरा जड़भरत न सिद्ध करे तो। लोग कहते हैं कि जनता चंचल चित्तवाली होती हैं परन्तु मेरा विचार इसके विरुद्ध है। जनता अपनी श्रद्धा में बड़ी पक्की होती है। आरम्भ में इसे वश में करना कठिन होता है, परन्तु जब एक व्यक्ति एक बार इस काम में सफल हो जाता है, तो वह उसकी कृतज्ञतापूर्ण स्तुति पर भरोसा कर सकता है। 'प्रमुख व्यक्ति' वे होते हैं जोकि जनता को पूर्ण रूप से वश में कर लेते हैं। वे इस सिंह को पालतू बना लेते हैं, और वह एक स्वामीभक्त कुत्ते के समान उनके पीछे चलता है। वे लोग इस अद्‌भुत काम को कैसे सिद्ध कर लेते हैं—यह दूसरी बात है; परन्तु कोई भी व्यक्ति उनके विजयी व यशस्वी होने से इन्कार नहीं कर सकता। दूसरी श्रेणी के 'प्रमुख व्यक्ति' वे होते हैं, जिन पर कि जनता प्रसन्नता से मुस्करा देती है—'उनको देखते ही लोगों की आँखों में चमक-सी आ जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो दो पुराने मित्रों की भेंट हुई है, और वे इस पर बहुत प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं। इन लोगों के विषय में भी जनता कोई विशेष दोषदर्शन नहीं करती। वह इन्हें स्वीकार कर लेती है। यह सच है कि वह उनके पीछे पागल नहीं हो उठती, परन्तु फिर भी उनके प्रति इसके हृदय में उत्साह की भावना होती है। जब कभी वे इसके आगे सिर झुकाते हैं, यह उनका हार्दिक स्वागत करती है। उनका काम सदैव उच्चकोटि का नहीं होता, फिर भी जनता उनके प्रति सहनशीलता से काम लेती है। यह उन्हें कहती है, "इस असफलता की पर-वाह न करें, अगली बार भाग्य अवश्य आपका साथ देगा।" निचली श्रेणी के लोग वे हैं, जोकि जनता के विश्वासपात्र बनना चाहते हैं। वे ऐसा करने का भरसक प्रयत्न करते हैं, परन्तु उन्हें सदा सफलता नहीं मिलती। जनता उनके प्रति उदासीनता, दोषदर्शन अथवा विरोध की भावना रखती है। परन्तु हम इनके धैर्य की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। वे एक के बाद दूसरा प्रयत्न करते हैं, परन्तु हारने पर हिम्मत नहीं हारते।

मुझसे पूछा जा सकता है कि मैंने यह वर्गीकरण कैसे कर लिया? मेरे लिए एक साधारण युक्ति सीख लेने पर यह कार्य बहुत सुगम हो गया था।

मैंने देखा कि प्रत्येक बैठक की समाप्ति पर कुछ लोग उन लोगों को घेर लेते थे, जिन्होंने कोई भाषण दिया होता था, किसी प्रस्ताव को उपस्थित अथवा अनुमोदित किया होता था। मैं अपने मन में सोचता, 'भला ये कौन लोग हैं ?' इस भीड़ में प्रायः सभी अवस्थाओं के लोग होते थे, परन्तु अधिकांश में नवयुवक ही होते। आरम्भ में मैं यह सोचता था कि वे लोग इन 'महापुरुषों' को इसलिए घेरकर खड़े हो जाते थे कि वे उनके निकट जाकर दर्शन कर सकें, उनसे कुछ बातचीत कर सकें, उनसे अनुमोदन का संकेत अथवा मित्रतापूर्ण मुस्कराहट पा सकें। परन्तु मुझे शीघ्र ही पता चल गया कि वे लोग पेन व पेन्सिलों से सुसज्जित थे, और उनके हाथों में छोटी-छोटी पुस्तकें थीं। पहले तो मुझे यह न समझ आया कि उनका उद्देश्य क्या है परन्तु शीघ्र ही मैंने जान लिया कि वे उनके आटोग्राफ के 'एलबम' थे। वे सभी उन लोगों के हस्ताक्षर प्राप्त करना चाहते थे, जिन्होंने कि कुछ प्रशंसनीय कार्य किया था। मैं उनकी कार्य-शैली की प्रशंसा किए बिना न रह सकता था। जभी किसी व्यक्ति का भाषण समाप्त होता, वे उसे जा घेरते। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता कि मानो किसी भूत की जादू की छड़ी से वे प्रकट हो गए हों। वे एक दूसरे को इधर-उधर धकेलते और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए यत्न करते थे। उनकी श्रद्धा बड़ी हृदयस्पर्शी और प्रशंसनीय थी। मैंने जल्दी ही जान लिया कि वे इस बात की भली प्रकार सूचना देते थे कि अमुक व्यक्ति के प्रति उनकी कितनी श्रद्धा है। 'प्रमुख व्यक्तियों' को घेरने वाली भीड़ तो बहुत भारी होती थी। उनके सम्मेलन में उपस्थित होते ही ये श्रद्धालु लोग चारों ओर से उनपर टूट पड़ते थे। यह भीड़ उनकी प्रतीक्षा में कहीं छिपी होती थी, और क्षणमात्र में उन्हें आ घेरती थी। 'प्रमुख व्यक्तियों' के साथ प्रतिदिन ऐसे ही बीतती थी, और उन्हें असंख्य पुस्तकों में अपने हस्ताक्षर करने होते थे। दूसरे दर्जे के 'प्रमुख व्यक्तियों' का भी मार्ग रोका जाता था, परन्तु वहाँ इतनी बड़ी भीड़ न होती थी। उनकी कीर्ति क्षणिक होती थी। उनसे एक-दो बार ही आटोग्राफ देने के लिए प्रार्थना की जाती थी, और फिर दर्शक लोग उन्हें बिल्कुल भुला देते थे। कभी-कभी निचले दर्जे के लोगों को भी क्षणिक गौरव प्राप्त हो जाता था। जब उनमें से कोई व्यक्ति एक अच्छी स्पीच दे देता था, तो आधी दर्जन के

लगभग लोग उसे घेर लेते और उससे हस्ताक्षर देने को कहते थे।

इन आटोग्राफ को संग्रह करने वालों में कई बड़े साहसी होते थे। वे केवलमात्र हस्ताक्षरों से ही सन्तुष्ट न होकर कुछ ठोस पदार्थ पाने का यत्न करते थे। वे एक आदर्श वाक्य, आदेश अथवा उपदेश पाना चाहते थे। मुझे स्मरण है कि एक महिला को ऐसे श्रद्धालुओं ने घेर लिया। वे उसके हस्ताक्षर तथा कुछ प्रोत्साहन-वाक्य पाने के अभिलाषी थे। उसके लिए अपना नाम लिखना तो कोई कठिन न था, परन्तु कोई चित्ताकर्षक सूक्ति सोच लेना सुगम काम न था। परन्तु वे लोग तब तक उसका पीछा छोड़ने को तैयार न थे, जब तक कि वह उनकी पुस्तकों में कोई रोमांचकारी सन्देश न लिख देती। उसने एक-दो बार अपने सिर को खुजलाया, मुख में पेन्सिल डाली और कुछ देर के लिए दूर तक दृष्टि डाली, और फिर प्रत्येक व्यक्ति की पुस्तक में ये शब्द लिख दिए—'भारत की सेवा करो।' इस पर वे सब प्रसन्न हो गए, और वहाँ से चलते बने।

मेरे जैसे व्यक्ति के लिए आटोग्राफ का संग्रह करना एक अतीव कष्टप्रद काम होगा, और उन पर हस्ताक्षर करना अत्यन्त खेदजनक बात। परन्तु वहाँ तो ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों पक्षों को ऐसा करने में आनन्द अनुभव होता है। आटोग्राफ-संग्रह, दया के समान, दुहरा वरदान था।[1] इससे हस्ताक्षर देने वाले व लेने वाले दोनों पक्षों को प्रसन्नता होती थी। संभव है कि यश व कीर्ति के भागी लोग इसमें अपनी स्तुति को पाते हों। वे इस बात से प्रसन्न होते थे कि लोगों की दृष्टि उन पर गड़ी हुई है। वे इस बात में आनन्द अनुभव करते थे कि लोग उनके हस्ताक्षरों व शब्दों को बहुमूल्य पदार्थों के समान सँभाल कर रखते हैं।

---

१. दया के समान···वरदान : प्रसिद्ध अंग्रेज नाटककार शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' नामक नाटक की नायिका पोर्शिया की दया सम्बन्धी प्रसिद्ध वक्तृता की इन पंक्तियों की ओर संकेत है :

'Tis twice blest; it blesseth him that gives and him that takes:—है दया दुहरा वरदान, करती उभय पक्ष कल्याण।

अब प्रश्न यह था कि यह आटोग्राफ-संग्रह का काम इतना लोकप्रिय कैसे हो गया है ? सच पूछो तो, हमने इसे दूसरे देशों से सीखा है। इसका जन्म हमारे देश में नहीं हुआ। हमने कई बातों में दूसरे देशों की नकल करना सीख लिया है, और ऐसा कोई कारण नहीं कि हम इस बात में भी उनका अनुकरण न करें। पश्चिमीय देशों में आटोग्राफ-संग्रह नवयुवकों के लिए एक प्रकार का शुगल है, और ऐसा कोई कारण नहीं कि हमारे युवक इस बात में उनसे पीछे रहें। उन्हें तो उनके साथ कदम मिलाकर चलना चाहिए और किसी प्रकार भी उनसे पीछे न रहना चाहिए।

परन्तु इस नई बात की व्याख्या करना इतना सुगम नहीं है। संभव है कि आटोग्राफ-संग्रह ने आखेटरूपी पुराने मनोविनोद के साधन का स्थान ले लिया हो। मुझे पता चला है कि कुछ असभ्य जातियों के मुखिया अपनी महत्ता का अनुमान इस बात से लगाते थे कि उनके पास मनुष्यों की खोपड़ियों की संख्या कितनी है। वे अपने शत्रुओं के सिर काटकर उन्हें अपने घरों की दीवारों पर सजा देते थे। ज्यों-ज्यों सभ्यता की उन्नति होती गई, शिकार की निर्दयता व क्रूरता कम होती गई। हम सबमें ही शिकार की स्वाभाविक प्रवृत्ति का कुछ अंश विद्यमान है; परन्तु मनोरंजन के साधन के रूप में शिकार इतना महँगा हो गया है कि हममें से बहुत-से इसे अपना नहीं सकते। फिर भी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति अपनी पूर्त्ति की माँग करती है। इसीलिए वर्तमान युग के युवक, और कुछ बड़ी आयु के व्यक्ति भी अपनी इस इच्छा को आटोग्राफ की खोज से पूरा करना चाहते हैं। एक शिकारी अपने शिकार पर आँख गड़ा लेता है, उसका पीछा करता है, और उसे पाने के लिए भरसक यत्न करता है। इसी प्रकार हम प्रसिद्ध व्यक्तियों पर आँख गड़ा लेते हैं, उनके पीछे-पीछे भागते हैं और अन्त में उनके हस्ताक्षर पाने में सफल होते हैं। हम अपने आपको किसी संकट या भय में डाले बिना ही यह सब कुछ कर लेते हैं। इस प्रकार हमें शिकार का आनन्द अपने आपको विशेष कष्ट में डाले बिना ही मिल जाता है। संभव है कि इस बात की कई और प्रकार से भी व्याख्या हो सकती हो। वीरपूजा की स्वाभाविक प्रवृत्ति प्रायः सभी के और विशेषतया नवयुवकों के हृदय में पाई जाती है। जो भी व्यक्ति जनसाधारण से कुछ विशेषता रखता है, वही हमारी

आँखों में 'महावीर' बन जाता है, और हम यह जतलाना चाहते हैं कि हम किसी न किसी प्रकार से उसके समीप रह चुके हैं। एक क्षणिक दृष्टि अथवा क्षणिक स्मृति ही हमारे हृदय में अभिमान का भाव भर देती है, परन्तु जब हम उसका आटोग्राफ पा लेते हैं; तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हमनें उसे अपना ही बना लिया है। हम ऐसा अनुभव करते हैं कि मानो उसका जीवित चित्र, हमारी प्रेयसी के चित्र के समान हमारे हृदय में सदैव विराजता है। इस प्रकार आटोग्राफ का एलबम एक प्रकार का देवालय अथवा वीरतापूर्ण (गौरवशाली) स्मृतियों का एक विशेष मन्दिर बन जाता है।

वह सदा मुझे घूरता रहता है | १५

वह बहुत कम बोलने वाली, सुशील लड़की थी। वह एक ऐसे घराने से सम्बन्ध रखती थी, जिसने उच्च शिक्षा को उस समय अपनाया था जब कि दूसरे अभी उसका स्वप्न भी न लेते थे। वह एक उन्नतिशील परिवार था; जिसमें शिक्षा के क्षेत्र में लड़के-लड़कियों में कोई भेद न था, वरन् पूरी समता थी। ऐसा प्रतीत होता था कि वे सब लड़के व लड़कियाँ, एक ऐसी दौड़ लगा रहे हैं जिसमें यूनिवर्सिटी की डिग्री पारितोषिक रूप में दी जाएगी। कभी-कभी तो ऐसा जान पड़ता था कि लड़कियों की अपेक्षा, लड़कों के लिए इस दौड़ में अधिक बाधाएँ हैं। ऐसा प्रतीत होता था कि लड़कियां लड़कों की अपेक्षा अधिक सुगमता से अपने लक्ष्य पर पहुँच जाती हैं, और लड़कों को वहाँ पहुँचने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। लड़कियाँ हँसती-खेलती दौड़ लगाती थीं, जबकि लड़के अनमने-से होकर इस काम को करते थे। यह दु:ख की बात थी कि कुछ 'कोर्स' केवल लड़कों के लिए ही नियत थे, नहीं तो लड़के-लड़कियों में पूरी-पूरी समता हो जाती। उस समय तो लड़कियों को इस बात का दु:ख था कि वे न तो इञ्जीनियर बन सकती थीं और न ही किसी शासन सम्बन्धी पद को पा सकती थीं।

इस घराने की लड़कियों से क्रियाशीलता, महत्त्वाकांक्षा व नेतृत्वशक्ति की आशा करना स्वाभाविक था। परन्तु वह लड़की इस ढाँचे में न ढली थी—वह तो बड़ी संकोचशील, एकान्तप्रिय, लज्जालु व सरल स्वभाव की थी। ऐसा प्रतीत होता था कि उसके हृदय में किसी प्रकार की बड़प्पन की अभिलाषा नहीं है। वह कालेज में केवल इसलिए आई थी कि बाकी लोग भी ऐसा ही कर रहे थे। वह यूनिवर्सिटी की डिग्री लेना चाहती थी, केवल इसलिए कि यह उनकी कुल-परम्परा थी। वह अपनी पुस्तकें पढ़ती थी, क्योंकि सभी लोग ऐसा करते थे। इस बात में वह अपने परिवार के आदर्शों

पर ही चलती थी, परन्तु दूसरी बातों में वह उनसे भिन्न थी। दूसरी लड़कियाँ सभी बातों में लड़कों की बराबरी करती थीं, परन्तु उसकी यह बात न थी। वे कालेज के चुनाव में अच्छी दिलचस्पी रखती थीं और अपने प्रतिद्वन्द्वी लड़कों से मुकाबले में बाजी ले जाती थीं। उनमें से एक अपने कालेज यूनियन के प्रधान पद के लिए चुनी गई थी। यह एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना थी। सारे कालेज में उथल-पुथल-सी मची हुई थी और विरोधी दलों में वाद-विवाद व लड़ाई-झगड़ा हो जाता था। जब उस प्रधान के सिर पर सफलता का सेहरा बांधा गया, तो सबके आनन्द की सीमा न रही। प्रान्त के सभी पत्रों में उसकी फोटो निकली, और उसे वीरांगना का पद प्राप्त हुआ। इसके बाद उसने अपने कर्त्तव्य को ऐसे उत्तम ढंग से निभाया कि विरोधी लोग भी यह कहने लगे कि यह तो जन्मजात प्रधान है। वह सभाओं का प्रबन्ध ऐसी दृढ़ता से करती थी कि जैसा कभी देखने में न आया था। उसने यूनियन के सामने एक नया कार्यक्रम रखा और उसे एक नया जीवन प्रदान किया। प्रत्येक व्यक्ति उसके पास शिक्षा व मार्ग-दर्शन पाने के लिए जाता था। उस लड़की के हृदय में बड़प्पन की प्रबल इच्छा थी—दूसरी लड़कियों में कुछ कम मात्रा में थी। स्पष्ट शब्दों में, वे प्रसिद्धि की भूखी थीं। वे सभी साधारण विद्यार्थियों के स्तर से ऊपर उठना चाहती थीं। प्रायः कोई भी साधारण पाठ-विधि के बाहर की चेष्टा ऐसी न थी जिसमें उनमें से कोई न कोई भाग न लेती हो। यह कहना ही पड़ता था कि यद्यपि वे सभी एक-सी गुणवती न थीं, पर उनकी महत्त्वाकांक्षा एक समान ही थी।

परन्तु वह लड़की न तो विशेष गुणवती थी, और न ही उसमें महत्त्वाकांक्षा थी। चुनावों व प्रतिस्पर्धा के कामों में उसकी रुचि न थी। वह भाषण देना पसन्द न करती थी और न ही कालेज की पत्रिका के लिए कुछ लिखना चाहती थी। वह सभी सार्वजनिक कामों से किनारा किए रहती थी। उसे उनमें न तो अपने तौर पर कोई रुचि थी और न ही दूसरों की भलाई के विचार से। यदि वह चुनाव के समय किसी के लिए वोट देने जाती, तो यह कुछ विचित्र-सी बात होती। अब शायद यह समझा जाए कि उसे पढ़ने-पढ़ाने का बहुत शौक था, परन्तु बात ऐसी न थी। यह सच

है कि वह सदैव परीक्षा में जैसे-तैसे पास हो जाया करती थी, पर इस बात का कोई विशेष महत्त्व न था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह अपनी पुस्तकों की ओर कम से कम ध्यान देती है। वह कभी फालतू पुस्तकें न पढ़ती थी और समाचारपत्र पढ़ने का भी उसका नियम न था। वह कभी अपने अध्यापक के पास जाकर छुट्टियों में पढ़ने योग्य पुस्तकों के सम्बन्ध में बातचीत न करती थी। यदि वह कभी उनसे ऐसा प्रश्न करने जाती तो वे अवश्य हैरान रह जाते। क्लास में वह ध्यान लगाकर लेक्चर को सुनती थी, परन्तु यह कहना कठिन था कि उसे उसमें कुछ रुचि है। कई बातों में, वह बहुत अच्छी छात्रा थी। वह अपना घर का काम नियमपूर्वक कर लेती थी, यद्यपि उसे पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता था कि उसने वह काम अपनी प्रसन्नता की अपेक्षा कर्त्तव्य-भावना से अधिक प्रेरित होकर किया है। वह क्लास में कभी देर से न आती थी, और न ही कोई मूर्खतापूर्ण अथवा खिझानेवाला प्रश्न करती थी। क्लास में उसकी आँखें अपनी पुस्तक पर ही गड़ी होती थीं। वह कभी खिड़की से बाहर झाँककर न देखती थी, और न ही छत की ओर। वह कभी किसी दूसरे विद्यार्थी से बात न करती थी और न ही कभी किसी प्रकार का शोर करती थी। प्रोफेसर कई बार अपने मन में सोचता, 'यह भला ऐसे व्यक्तित्वहीन ढंग से क्यों रहती है—इसे ऐसा कौन-सा वैराग्य लगा हुआ है?' उसके विचार में इसका कारण उसकी दुर्बल काया थी—वह बहुत दुबली-पतली व पीले रंग की थी। वह समझता था कि उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, परन्तु एक दिन उसने उसे बाइसिकल पर जाते देखा। उसे वह एक नये रूप में दिखलाई पड़ी। वह उस पर डटकर बैठी हुई थी, और उसे बड़ी तेजी व फुर्ती से चला रही थी। उस समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह इतनी दुर्बल नहीं, जितना कि वह समझे बैठा था। वह सुसंयत क्रियाशक्ति का प्रमाण दे रही थी और एक कसरती व्यक्ति के समान प्रतीत होती थी। पीछे से उसे पता चला कि उसे साइकिल चलाने का असीम शौक है और साइकिल की सीट पर बैठते ही वह अपने आपको पूर्णतया सजीव समझती है। उसके भाई ने एक बार यह डींग मारी थी कि साइकिल की लम्बी दौड़ में कोई भी उसकी बहिन की बराबरी नहीं कर सकता। परन्तु यह समझना कठिन न था कि वह उसकी इस निपुणता में इतना गौरव क्यों

अनुभव करता है। सच बात तो यह थी कि उन सबमें कुलीनता का अभिमान कूटकर भरा हुआ था।

परन्तु इस लड़की में यह दोष न था—वह अपने परिवार के अन्य व्यक्तियों की सफलताओं से प्रभावित न हुई थी। वह मिलनसार प्रकृति की न थी। यह एक आश्चर्य की बात थी कि वह उस बड़े परिवार में कैसे अपना निर्वाह किए जा रही थी। देखने वाले को तो यही प्रतीत होता कि वे लोग उसके लिए भार रूप ही हैं। उसके भाई-बहिन, उसके बहुत-से चचा-चाचियों व उनके बच्चे उसके लिए कष्ट का कारण ही रहे होंगे। उनमें से प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा का ही अनुगामी था और अपने ढंग से ही अपने प्रभाव को जताना चाहता था। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से भिन्न अपने व्यक्तित्व को प्रकट करना चाहता था। इस संसार में अनेक छोटे-बड़े मार्ग हैं, और ऐसा प्रतीत होता था कि उस परिवार का प्रत्येक व्यक्ति उनमें से किसी न किसी मार्ग का पथिक था। उनकी वेश-भूषा, मनोरंजन के साधन, व्यावहारिक प्रवृत्ति—सभी में आकाश-पाताल का अन्तर था। उनको तो एक परिवार मानना ही कठिन था—वे तो संयुक्तराष्ट्र संघ की संस्था के समान थे। उनके घर में अकस्मात् आने वाला व्यक्ति भी उनकी मनोहर विविधता को देखे बिना न रह सकता था; परन्तु उसे यह जानकर आश्चर्य होता था कि वे किसी न किसी सूत्र में परस्पर बंधे हुए हैं।

वह सूत्र उनका दादा था। यह आश्चर्य की बात थी कि वह पुराने ढर्रे का आदमी इस निपट नई रोशनी वाले परिवार के प्रति उदारतापूर्ण सहिष्णुता का भाव रखता था। कोई और व्यक्ति अवश्य ही उस बोझ के नीचे दब जाता, जो कि ये लड़के-लड़कियां अपने मुख्य परामर्शदाता के मस्तिष्क व हृदय पर डालते रहते थे, परन्तु वह कुलपति तो इसी बात पर फूलता-फलता दीख पड़ता था। ऐसा प्रतीत होता था कि इस परिवार में ही उस के जीवन की सार्थकता है। सभी वृद्ध पुरुष प्रायः बातूनी हो जाते हैं, इसलिए दूसरे लोगों को उनका संग नहीं रुचता। वे प्रायः दूसरों के आगे अपना रोना रोते हैं और घर वालों की शिकायत करते हैं। वे भूतकाल की उन बातों को स्मरण करने में सुख अनुभव करते हैं, जिनमें दूसरे लोगों की कोई

रुचि नहीं होती। लोग उनकी बातचीत से खीझ उठते हैं, और उनके मित्र वपरिचित लोग उनसे किनारा करना ही पसन्द करते हैं। वह दयालु बूढ़ा भी दोषों से रहित न था— लोग उससे भी किनारा करते थे, परन्तु बड़ी समझदारी के साथ। वह कभी रोने-धोने की बातें न करता था, वह तो सदैव (अपने परिवार की) स्तुति के गीत गाता था। वह अपने कष्ट-क्लेश अथवा संसार की निर्दयता की चर्चा करने के स्थान में अपने परिवार की सफलताओं का वर्णन किया करता था। एकाध बार तो इस स्तुति-गीत को सुनने में कोई हानि न थी, परन्तु वह इसे इतनी बार दुहराता था कि सुनने वाले का मन ऊब जाता था। वह सदैव अपनी कथा को एक ही ढंग से आरम्भ करता था, और उसी ढंग से उसे शिखर तक पहुँचा देता था। उसे लोगों को अपने लड़के-लड़कियों व उनके बच्चों के सम्बन्ध में पूरा परिचय देकर ही सन्तोष न होता था, वह तो कथा का आरम्भ अपने दादे से करता था। वह एक प्रकार से यह सिद्ध करना चाहता था कि सभी बच्चे उसके दादा की भविष्यवाणियों को पूरा कर रहे हैं। वह इस प्रकार कहानी शुरू करता था, "वे एक विलक्षण व्यक्ति थे" और आगन्तुक समझ लेता था कि अब उसे दो घण्टे तक व्याख्यान सुनना पड़ेगा। इस बात का कोई महत्त्व न था कि उसका किसी व्यक्ति से कहाँ मेल हुआ है। नाटक का पृष्ठभाग चाहे कोई क्यों न हो—रङ्गमंच चाहे घर की बैठक हो अथवा सड़क का किनारा—यहाँ तो नट एक ही नाटक दिखा सकता था। एक हँसोड़ व्यक्ति ने तो यहाँ तक कह दिया था कि उसने अपना पार्ट जबानी याद कर रखा है, परन्तु बात ऐसी न थी। यह पार्ट तो उसके लिए सर्वथा स्वाभाविक था। सच पूछो तो, उसके दादा 'विलक्षण' न थे वह स्वयं ही वैसा था। उसने इस संसार में एक ऐसे बुद्धिमान् व साहसी परिवार को जन्म दिया था—यह उसके लिए बड़े गौरव की बात थी।

एक दिन उसका प्रोफेसर से मेल हो गया। प्रोफेसर ने उससे किनारा करने का पूरा प्रयत्न किया, परन्तु उसकी सभी चालें निष्फल रहीं। उनका मेल उन दो मेंढ़ों के समान था, जो कि विरोधी दिशाओं से आकर टकराते हैं। वे सचमुच मेंढ़ों के समान ही थे—दोनों डटकर सैर करते थे और उस

समय विपरीत दिशाओं से चले आ रहे थे। अध्यापक अपनी शाम की सैर के बाद घर को लौट रहा था, और बूढ़े सज्जन का दैनिक कार्यक्रम अभी अधूरा ही था। उनका मेल, एक प्रकार से, सड़क के बीचोबीच हुआ। बूढ़े सज्जन ने प्रेमपूर्वक कहा, "आपके दर्शन बहुत दिनों के बाद हुए हैं।" अध्यापक ने खिन्न स्वर से उत्तर दिया, "कोई विशेष बात न थी—मैं तो सायंकाल की सैर प्रायः नियमित रूप से करता हूँ। वृद्ध ने शुभकामना प्रकट करते हुए कहा, "मित्र, आपको ऐसा ही करना चाहिए। आप जानते होंगे कि मेरी पोती आपके पास पढ़ती है; वह कई बार आपके सम्बन्ध में बात करती है।" "यह तो उसकी शिष्टता है। अच्छा, अब आपसे मैं क्षमा चाहता हूँ, मुझे एक मीटिंग में जाना है।" वृद्ध सज्जन ने निन्दा के स्वर मे कहा, "ये निगोड़ी मीटिंगें—मेरे दादा मुझे सदा इनसे बचने का उपदेश दिया करते थे।" अब तो प्रोफेसर अपने आपको पिंजरे में फँसे हुए चूहे के समान समझने लगा। वह जानता था कि अब उसे एक बहुत पुरानी कथा सुननी पड़ेगी, और उसे बचाव की कोई सूरत न दीख पड़ती थी। बूढ़ा कथा के उस बूढ़े मल्लाह[१] के समान था, यद्यपि प्रोफेसर बराती न था फिर भी परिणाम वैसा ही था। दो घंटे के बाद बूढ़े बाबा ने कहा, "मेरी पोती का ध्यान रखिए। वह बहुत होनहार है। आप नहीं जानते, वह एक दिन बड़ी वैज्ञानिक (साइन्सदान) बनेगी। उस दिन आप इस बात में गौरव अनुभव करेंगे कि वह आपकी शिष्या रह चुकी है।" यह कहकर बूढ़े मियाँ चलते बने। प्रोफेसर को इस बात का आश्चर्य था कि यह ज्वलन्त भविष्यवाणी कुछ समय पहले क्यों न की गई थी। इससे उसकी मानसिक व्यथा कुछ कम हो जाती और वह शीघ्र घर जाने योग्य हो जाता। परन्तु होनहार ऐसी न थी। प्रोफेसर भाग्यवादी था, इसलिए उसने इस परिस्थिति को चुपचाप अपना लिया।

---

१. कथा का बूढ़ा मल्लाह: अंगरेज कवि कालरिज की प्रसिद्ध कविता 'दी एन्शेण्ट मरीनर' की ओर इशारा है। वहाँ एक बूढ़ा मल्लाह एक बराती को रास्ते में ही रोक लेता है, और तब तक नहीं छोड़ता जब तक कि उसकी आपबीती समाप्त नहीं होती।

कई दिन बीत गए। एक दिन प्रातःकाल वही लड़की अध्यापक के पास जा खड़ी हुई, तो वह चकित-सा रह गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो एक मूर्त्ति चलने-फिरने लगी है। उसे उस समय बहुत आश्चर्य हुआ, जब उसने एक धीमे परन्तु दृढ़ स्वर में, एक लड़के की ओर इशारा करते हुए, कहा, "वह लड़का सदा मुझे घूरता रहता है। वह कई दिनों से ऐसा कर रहा है, परन्तु मैंने आपसे शिकायत करना उचित न समझा था। मेरे लिए तो क्लास में बैठना भी दूभर है।" प्रोफेसर उसके कष्ट को समझ सकता था, सो उसने उसे ढाढस बँधाया और लड़के को बुलाकर डाँट-डपट की।

बहुत दिन बीत गए परन्तु वह लड़की फिर क्लास में न आई। एक दिन सायंकाल प्रोफेसर का उसके पिता से (सौभाग्य से उसके दादा से नहीं!) मेल हो गया तो उसने उसके सम्बन्ध में पूछा। उसने कहा, "उसने तो पढ़ाई बन्द कर दी है। वह अब नृत्यकला सीख रही है।" कितने आश्चर्य की बात है कि वह अब फिल्म स्टार (सिनेमा की अभिनेत्री) बनने की सोच रही है!

अंग्रेज | १६

जब गाड़ी स्टेशन पर ठहरी, तो मैं बड़ी शान से अकड़ता हुआ डिब्बे में जा घुसा। आज भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने उस दिन एक बड़े साहस का काम किया था। परन्तु न्याय की मांग यह है कि इस बात का श्रेय, मुझे नहीं, मेरे कुली को मिलना चाहिए, जिसने लेडी मैकबेथ[1] के समान मेरे हृदय में साहस का संचार कर दिया और मुझे उस समय भयंकर परिस्थिति का सामना करने योग्य बना दिया। मैं तो फिर भी उस शक्ति-शाली कुली के साधारण अनुयायी के समान था। वह अपने सिर पर बोझ को टिकाए हुए मेरे आगे-आगे चल रहा था, और मैं दीन भाव से उसके पीछे-पीछे चला जा रहा था। डिब्बे में पहुँच जाने पर मेरी जान में जान आई। मैं जानता था कि अब कोई व्यक्ति मुझे वहाँ से बाहर न निकालेगा, परन्तु पहला प्रश्न यह था कि सामान को कहीं न कहीं टिका लिया जाए। उस डिब्बे में, जो कि मनुष्यों और सामान से ठसाठस भरा हुआ था, सामान के लिए कोई ठिकाना न दीख पड़ता था, परन्तु वह चतुर कुली इस कठिनाई को देखकर न घबराया। उसने डिब्बे में, मेरे थोड़े-से सामान को ज्यों-त्यों करके अड़ा ही दिया, परन्तु मुझे यह ज्ञान हो गया कि उसने मेरे लिए एक कठिनाई उपस्थित कर दी है। मेरा सूटकेस डिब्बे के इस कोने में धरा था तो बिस्तरा परले सिरे पर, मेरी थरमस एक सीट के नीचे धकेल दी गई थी, और मेरा पुस्तकोंवाला छोटा-सा ट्रंक कहीं और पड़ा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं एक साम्राज्यवादी अंग्रेज के समान हूँ, जिसके अधिकृत प्रदेश संसार के इस कोने से उस कोने तक बिखरे हुए हैं। परन्तु एक और बात से

१ लेडी मैकबेथ: शेक्सपियर के दुःखान्त नाटक मैकबेथ की नायिका। इसमें महत्त्वाकांक्षा की मात्रा अतीव अधिक थी।

मैं घबरा-सा गया। अब उन वस्तुओं की देखभाल का प्रश्न था, और यद्यपि साम्राज्यवादी इन बातों से नहीं घबराते, मुझे तो यही भय लगा हुआ था कि कहीं मेरी कोई बहुमूल्य वस्तु खो न जाए। परन्तु कुली के मन में ऐसा कोई भय न था। डिब्बे से बाहर निकलने के पहले उसने नम्र नमस्कार व मृदु मुस्कान के साथ मुझे मेरी सब वस्तुएँ एक-एक करके दिखा दीं, और एक निश्चयात्मक स्वर में कहा, "सभी वस्तुएँ ठीक-ठिकाने हैं—क्यों साहब ठीक है न ? जो वस्तुएँ मुझे आपने दी थीं, उन सबको मैं सुरक्षित रूप में ले आया हूँ।" उसके स्वर में आत्मविश्वास का कुछ ऐसा भाव था जिससे मुझे भी आश्वासन मिल गया। फिर, एक संरक्षक के समान उसने एक सीट का सिरा दिखाते हुए प्रेरणात्मक स्वर में कहा, "साहब, वहां क्यों नहीं बैठ जाते ? आपके लिए वहाँ काफी जगह है।" यद्यपि वह सीट कोई आराम देने वाली न थी, फिर भी मैंने एक छोटे बच्चे के समान, उसकी आज्ञा का पालन किया।

अपने ठिकाने पर बैठ जाने के बाद, मैंने डिब्बे में बैठे हुए मुसाफिरों पर दृष्टि डाली। मैंने देखा कि वे सभी प्रश्नसूचक भाव से मेरी ओर देख रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता था कि वे सभी मुझसे पूछ रहे हैं, 'तुम हमारे डिब्बे में क्यों आ घुसे हो ? क्या तुम्हें पता नहीं कि तुम्हे यहाँ आने का कोई अधिकार नहीं है ? हम सभी दूर-दूर के स्थानों से चले आ रहे हैं और हमने अपनी सीटें रिज़र्व करवाई हुई हैं। तुम्हें इस प्रकार बेतकल्लुफी से अन्दर घुस आने की हिम्मत ही कैसे हुई ?' यह स्वागत तो, सचमुच, उत्साह भंग करने वाला था। और कोई आदमी होता तो उसका ऐसी आवभगत से दिल ही टूट जाता। परन्तु मुझे अपने साथी मुसाफिरों के मौन प्रतिवादों व कोप-दृष्टि को चुपचाप सहना पड़ा। मैंने देखा कि उनमें से एक मुझे बड़े सन्देह की दृष्टि से देख रहा है। वहाँ के वातावरण को, सर्वथा शत्रुता-पूर्ण तो नहीं, परन्तु प्रतिकूल पाकर मैंने एक पुस्तक निकालकर उसे पढ़ना आरम्भ किया। मनुष्य को अपनी परिस्थिति से सर्वथा अलग करने वाली वस्तुओं में पुस्तक भी एक है। इस पुस्तक ने भी मेरे लिए यही काम किया। मुझे तो वह एक प्रकार से हवाई हमले से बचाने वाली कोठरी के समान प्रतीत हुई। मैं अपने साथी मुसाफिरों द्वारा गिराए हुए सन्देह, क्षोभ

व अमित्रता के बमों से सर्वथा सुरक्षित रहकर उस पुस्तक को पढ़ता रहा।

परन्तु एक मनुष्य की पुस्तक पढ़ने की शक्ति की भी तो सीमा होती है, और रेल का डिब्बा भी तो लायब्रेरी नहीं होता। यहाँ वह शान्तिमय व नीरव वातावरण कहाँ, जोकि चित्त को एकाग्र करने में सहायक होता है? अस्तु, कुछ एक पृष्ठों पर दृष्टि दौड़ाकर मैंने पुस्तक को नीचे रख दिया। मेरे एक सहयात्री ने कहा, "मैं इस पुस्तक को देख सकता हूँ जी?" मैंने सखाभाव से कहा, "हाँ जी, प्रसन्नतापूर्वक देखिए।" मुझे इस बात की प्रसन्नता थी कि वह पुस्तक मेरे व मेरे एक साथी मुसाफिर के बीच में एक प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर देगी। मैंने सोचा, यह पुस्तक उस अमानुषी संकोच को दूर कर देगी, जिसमें कि मैंने अपने आपको कैद कर रखा है। हुआ भी ऐसा ही, और उस सज्जन से मेरी खूब बन आई। उस पुस्तक को आधार बनाकर हमने संसार के प्रायः सभी विषयों पर बातचीत कर डाली। उस दिन मुझे पुस्तकों की सामाजिक संपर्क सम्बन्धी महत्ता का पूरा निश्चय हो गया।

मुझे यह मानना पड़ेगा कि उस भद्रपुरुष को न तो वह पुस्तक पसन्द आई और न ही उसका लेखक। उसे इस बात पर आश्चर्य होता था कि भारतवासी उस लेखक की पुस्तकों को इतने चाव से क्यों पढ़ते हैं। उसने कटाक्षपूर्ण स्वर में कहा, "उसे तो शैली का ज्ञान ही नहीं है, और उसके विचार भी पुराने ढर्रे के हैं। कई और आधुनिक अंग्रेज लेखक हैं, परन्तु न जाने क्यों भारतीय लोग उन्हें पसन्द नहीं करते। भारतवासी भी तो विचित्र प्राणी हैं। मैंने इनके साथ तीस वर्ष तक काम किया है, परन्तु मैं अब तक इन्हें समझ नहीं पाया। इन्हें देखकर मुझे सदा चकित ही रहना पड़ता है।" ये बातें सुनकर मैं कुछ घबरा-सा गया। मैंने सोचा यह अंग्रेज मेरे सम्बन्ध में क्या सोचता होगा—यही न कि मैं एक विचित्र जाति का एक विचित्र नमूना हूँ। परन्तु मेरी नैसर्गिक बुद्धि ने मुझे यह प्रेरणा की कि मैं उस बातूनी व दीखने में मित्ररूप अंग्रेज से अपने देश व देशवासियों के सम्बन्ध में कोई बात न करूँ। तो मैंने उन विषयों पर उससे बातचीत आरम्भ की, जिनमें किसी प्रकार के झगड़े की सम्भावना न थी। मैंने यह काम बड़ी शिष्टता व आडम्बरहीन ढंग से किया। मैंने उससे पूछा, "आपको

पढ़ने का बहुत शौक है क्या?" "नहीं तो? मुझे तो इसमें कुछ लाभ नहीं दीखता। यह तो निकम्मे आदमियों का काम है। जब मैं किसी व्यक्ति को पढ़ने का शौक देखता हूँ तो मैं झट समझ लेता हूँ कि वह बड़ा ही आलसी है। आप भी आलसी ही होंगे—यह जो पुस्तकों का बक्स आप सफर में भी अपने साथ ही रखते हैं, इससे तो ऐसा ही प्रतीत होता है।" इस उपालम्भ से मैंने कुछ लज्जा-सी अनुभव की, परन्तु अपने चित्त को डाँवाडोल न होने दिया। यह जताने के लिए कि मेरी हार नहीं हुई, मुझे फिर से युद्ध में भाग लेना पड़ा। मैंने उसे करारा उत्तर दिया, "फिर भी आप कुछ तो पढ़ते-पढ़ाते ही होंगे? कोई भी पढ़ा-लिखा मनुष्य इसके बिना नहीं रह सकता।" उसने कहा, "हाँ, मैं कुछ तो पढ़ता ही हूँ—परन्तु मेरी पढ़ाई तीन वस्तुओं तक ही परिमित है। मैं एक दैनिक समाचारपत्र लेता हूँ, और झटपट उसे पढ़ डालता हूँ। मैं भारत से एक साप्ताहिक मँगवाता हूँ और एक इंग्लैण्ड से। इन दोनों से मुझे वे सब समाचार, साधारण ज्ञान व वह मानसिक उत्तेजना प्राप्त हो जाती है, जिसकी आवश्यकता मुझे होती है। मैं पिछले तीस वर्षों से ऐसा ही करता आ रहा हूँ," "आप कभी-कभी कोई उपन्यास तो पढ़ते ही होंगे?" मैंने कहा। वह गरजकर बोला, "बिल्कुल नहीं! जब मैं बहुत छोटा था, तो मैंने कुछ उपन्यास पढ़े थे। मुझे यह अनुभव हुआ कि एक उपन्यास दूसरे उपन्यास से किसी प्रकार भिन्न नहीं होता, अतः एक उपन्यास ही पढ़ लेने से मानो सभी उपन्यास पढ़ लिए गए।" यह बात सुनकर मुझे निश्चय हो गया कि उससे पुस्तकों के सम्बन्ध में बात करना निरर्थक है।

कुछ देर के बाद, मैंने उससे पूछा, "आपकी आयु कितनी है?" मैंने डरते-डरते यह प्रश्न किया था, क्योंकि मुझे और कुछ सूझा ही नहीं, परन्तु मेरा दाँव ठीक बैठा। उसने कहा, "मेरी आयु ६५ वर्ष है।" उसके स्वास्थ्य, उसकी चाल-ढाल व बातचीत करने के ढंग से मैं इस निश्चय पर पहुँच सकता था कि उसकी आयु लगभग ४५ वर्ष होगी। उसकी सजीवता, चुलबुलापन व आत्मविश्वास की भावना—किसी बात से भी उसके बूढ़ेपन का लेशमात्र भी परिचय न मिलता था। वह कई बातों में मुझे जवान व शक्तिशाली दीख पड़ता था। उसकी जवानी कच्चे ढंग की न थी, वरन् उन्नत प्रकार की थी। इन सब बातों ने उस विचित्र व्यक्ति के प्रति

मेरे कौतूहल को बढ़ा दिया। जैसे एक रोगी प्रत्येक व्यक्ति से अपने कष्ट को दूर करने वाली औषधि के सम्बन्ध में पूछना चाहता है, वैसे ही वह मनुष्य जिसका बुढ़ापा निकट आ रहा है, दूसरों से यह जानने के लिए उत्सुक होता है कि वह अपने यौवन को कैसे स्थिर रख सकता है। दुर्भाग्य से, मैं अब शीघ्रतापूर्वक उस अवस्था में पहुँच रहा हूँ, जिसे भारत में वृद्धावस्था कहते हैं। मै जानता हूँ कि यौवन, प्रौढ़ावस्था व बुढ़ापे की सीमा मध्य यूरोप के कई देशों की सीमाओं के समान है, क्योंकि आज तक कोई उनका निर्णय नहीं कर सका। जिसे हम एक देश में प्रौढ़ावस्था कहते हैं, वही दूसरे देश में वृद्धावस्था कहलाती है। मुझे याद है कि एक बार एक अंग्रेज महिला से मेरी भेंट हुई—उसमें इतनी जीवन-शक्ति व स्फूर्ति थी कि उसे देखकर नौजवान भी लज्जित हो जाते। उस समय उसकी आयु ७० वर्ष की थी, और उसने मुझे बताया कि उसने बुढ़ापे में अभी प्रवेश किया ही था। उसके मत में बुढ़ापा ७० वर्ष से ही आरम्भ होता है। भारतवर्ष में तो आयु के मापदण्ड भिन्न-भिन्न हैं। कई तो जन्म से ही बूढ़े होते हैं, परन्तु अधिकांश व्यक्तियों के लिए बुढ़ापा ४० वर्ष की आयु में आरम्भ हो जाता है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। मेरी सदा यही इच्छा रहती है कि मैं दूसरे लोगों से जवान बने रहने का रहस्य जान लूं। फिर मैंने इस सज्जन से पूछा, "आपने अपने स्वास्थ्य को ऐसा अच्छा कैसे बना रखा है?" उसने उत्तर दिया, "यह तो बहुत सुगम बात है। तीस वर्ष पहले जब मैं भारत में आया, तो मेरा परिचय एक कैदी से हुआ, जो कि मेरी जेल में बन्द था (मुझे उस समय समझ में आया कि वह भद्र पुरुष किसी जेल का सुपरिण्टैण्डेण्ट था)। वह देखने में एक साधु प्रतीत होता था, परन्तु वास्तव में था एक भयङ्कर अपराधी। उसे लम्बी कैद की सजा हुई थी, और वह कई जेलों में हो आया था। जहाँ कहीं भी उसे कैद में रखा जाता, वह अधिकारियों के लिए बवाले जान हो जाता। मेरी जेल में आने से पहले ही मुझे उसके सम्बन्ध में सावधान कर दिया गया था। मन में तो मैं उससे बहुत भय खाता था, परन्तु मैंने उसके वास्तविक रूप को जानने का निश्चय कर लिया। उससे भली प्रकार परिचित हो जाने पर मुझे पता चला कि वह एक आकर्षक व्यक्ति है। यही आकर्षण का गुण था जिसने उसे कई

धोखाधड़ी के मामलों में सफलता दिलाई थी। साथ ही मैंने यह भी देखा कि उसका शरीर व्यायाम से खूब सधा हुआ था—वह ऐसा सुडौल व लचकदार था कि मानो किसी कारीगर ने अपने हाथों से उसे घड़ा हो। मैंने उससे पूछा, 'तुम्हारा शरीर इतना फुर्तीला कैसे बन गया है?' उसने कहा, 'कई प्रकार के व्यायाम करने से।' मुझे उन अभ्यासों को सीखने की उत्सुकता हुई, परन्तु उसने मुझे शिक्षा देना स्वीकार न किया।"

अब मैंने उसकी बात काटकर पूछा, "उस कैदी ने इस रहस्य को बतलाने के लिए कुछ कीमत माँगी थी क्या ?" उसने दृढ़ता से उत्तर दिया, "नहीं तो—उसने मुझसे कोई पैसा-धेला नहीं माँगा। वह तो केवल यह चाहता था कि मैं कुछ प्रतिज्ञाओं का पालन करूँ, परन्तु यह मेरे लिए कठिन काम था।" मैं फिर बीच में ही बोल उठा, "यह तो एक विचित्र-सी बात है कि एक अपराधी आपको कुछ प्रतिज्ञाएँ पालन करने की प्रेरणा करे।" उसने कहा, "वह कोई साधारण अपराधी न था। वह चाहता था कि मैं चाय और शराब को न छूऊँ और भारतीय ढंग की रोटी खाऊँ। उसने हर मंगलवार को व्रत रखने के लिए भी मुझे कहा। उस दिन नमक खाने की मनाही कर दी थी।" मैंने दृढ़ता से कहा, "ये बातें तो बहुत सुगम हैं। सच पूछो तो, मैं तो कई वर्षों से इनमें से बहुत-सी प्रतिज्ञाएँ पालता आ रहा हूँ, परन्तु मुझे इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।" वह बोला, "मेरे विचार में, लाभ तो इन व्यायामों से होता है। ये बहुत ही सुगम प्रकार की चेष्टाएँ हैं, परन्तु इन्हें दिन में तीन बार करना होता है। पहले तो ये बड़ी कठिन प्रतीत होती हैं, परन्तु कुछ समय के बाद ये बहुत ही मनोरंजक हो जाती हैं।" इन सब बातों ने मेरी उत्सुकता की पराकाष्ठा कर दी। इन व्यायामों में कुछ न कुछ ऐसी बात होनी चाहिए जोकि एक व्यक्ति को ६० वर्ष की आयु में भी जवान बनाए रख सकती है। उनको सीखने की मुझे प्रबल इच्छा हुई। मैंने अपने मन में निश्चय कर लिया कि मैं उस स्थान पर जा टिकूँगा, जहाँ कि उस भद्रपुरुष ने वे व्यायाम सीखे थे। मैंने उससे यह प्रार्थना भी की कि वह मुझे उन व्यायामों को सिखाने की कृपा करे। परन्तु उसने कहा, "मैं ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे ऐसा करने की मनाही की गई है। यदि मैं इस आज्ञा को भंग करूँगा, तो कोई नई विपत्ति

मुझ पर आ पड़ेगी।"

"आप इन बातों में विश्वास करते हैं, क्या ?"

"हाँ, अवश्य।"

कुछ समय के बाद वह सज्जन गाड़ी से उतर गया। उसने जाते समय विदा भी न ली। आज तक मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि वह किस ढंग का अंग्रेज था। इसमें सन्देह नहीं कि वह कुछ खस्ता-सा था, परन्तु साधारणतया अच्छे स्वभाव का था।

सन्तोषी मनुष्य | १७

मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि एक मनुष्य जन्म से ही सन्तुष्ट होता है अथवा सर्वथा असन्तुष्ट। मैं स्वयं असन्तुष्ट स्वभाव का हूँ, अतः उन व्यक्तियों के लिए, जिन्हें कि सन्तोषी स्वभाव का समझा जाता है, मेरे हृदय में असीम श्रद्धा है। इस असन्तोष के युग में, ऐसे व्यक्ति मुझे तो मध्य युग के महात्माओं के समान पवित्र प्रतीत होते हैं। सच पूछो तो, कभी-कभी मेरी यह धारणा होती है कि संसार के सभी धर्मप्रचारकों को 'सन्तोष-गीता' के प्रचार में तन-मन से जुट जाना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति का आदर्श वाक्य 'सन्तोषी बनो'—ऐसा होना चाहिए और प्रत्येक जाति का लक्ष्य भी यही होना उचित है। ऐसा हो जाने पर, व्यक्तियों के आपस के भीषण संघर्ष का अन्त हो जाएगा, और सभी जातियों की एक दूसरे के प्रति स्पर्धा और ईर्ष्या भाव का लोप हो जाएगा। तब यह संसार स्वर्ग के समान सुखमय हो जाएगा। परन्तु अभी ऐसा नहीं हुआ, इसलिए सन्तोष जीवन के परम वाञ्छनीय पदार्थों में से एक है।

परन्तु यह चित्र का एक ही पक्ष है। बहुत-से ऐसे व्यक्ति भी हैं जोकि असन्तोष को संतोष की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं। उनके मत में सांसारिक उन्नति का मूल कारण यही है। कन्दरा से असन्तुष्ट होकर मनुष्य ने कुटिया बनाई, कुटिया के प्रति असन्तोष बढ़ा तो उसने कच्चे कोठे बनाना आरम्भ किया; उनसे मन ऊब उठा तो पक्के घर बनाने लगा। होते-होते कई मंजिल के मकान बनने लगे और अब गगनचुम्बी प्रासाद की बारी आई है। उनका कहना है कि असन्तोष के द्वारा ही मनुष्य कन्दरावास के स्थान में गगनचुम्बी प्रासादों में रहने का अधिकारी बन गया है। परन्तु, यह एक विवादास्पद बात है कि इन विशाल भवनों के निवासी कन्दराओं में रहने-वालों की अपेक्षा अधिक सन्तुष्ट हैं।

चाहे कुछ भी हो, हम भारतवासियों को चिरकाल से सन्तुष्ट रहने की शिक्षा दी जा रही है। कुछ दिन हुए मेरी एक मित्र से भेंट हुई। वह आत्मोन्नति का उत्कट अभिलाषी है। जब मैं उसके पास बैठा था, तो उसका छोटा भाई उसे प्रणाम करने के लिए भीतर आया। दोनों भाइयों की आयु में बहुत कम अन्तर है, और दोनों ही ऐसे अच्छे स्वभाव के व परस्पर प्रेम करनेवाले हैं कि वे एक दूसरे के प्रति गाढ़ी मित्रता का व्यवहार करते हैं। छोटा भाई, अपने बड़े भाई के प्रति आदर व सम्मान को स्थिर रखते हुए आवश्यकता पड़ने पर उसकी आलोचना करने के अधिकार से अपने आपको वञ्चित न रखता था। उसी प्रकार, बड़ा भाई आवश्यकता पड़ने पर उसकी सम्मति लेने के लिए सदैव उत्सुक रहता है, और उसके द्वारा अपनी समीक्षा सुनने में नहीं हिचकिचाता। मैंने तो कई बार देखा है कि छोटा भाई बड़े भाई की युक्तियों को छिन्न-भिन्न कर देता है परन्तु इससे उनके बीच में किसी प्रकार का मनमुटाव नहीं उत्पन्न होता। अब कुछ समय से बड़ा भाई अपनी नैतिक उन्नति के लिए बैंजमिन फ्रैंकलिन के समान उत्सुक हो गया है, और प्रायः अपने छोटे भाई को अपनी चरित्र सम्बन्धी उन्नति का मापदण्ड समझने लगा है। तो, उसने इसी भावना से उससे पूछा, "तुमने मुझमें कोई परिवर्तन देखा है क्या ?" छोटा भाई, बिना किसी हिचकिचाहट व संकोच के बोल उठा, "मुझे समझ नहीं आता कि आप संतोष वृत्ति से क्यों काम नहीं ले सकते ?" मैं नहीं जानता कि इन शब्दों ने उस भद्रपुरुष पर क्या प्रभाव डाला, परन्तु इन्होंने मुझे सन्तोष के लाभों पर विचार करने के लिए प्रेरित कर दिया। मैंने तो सन्तोष को जीवन के लिए अतीव आवश्यक गुण मानना सीख लिया था। यहाँ मैं एक घटना का वर्णन करना आवश्यक समझता हूँ, जिसका मुझे बहुत समय पहले पता चला था। हमारे प्रान्त की एक प्रसिद्ध संस्था के लिए एक प्रधान कार्यकर्त्ता की आवश्यकता थी। दो व्यक्तियों में संघर्ष हो रहा था—एक गुरु था और दूसरा शिष्य। सभी लोग यह जानकर चकित रह गए कि शिष्य को उस पद के लिए चुना गया। किसी व्यक्ति ने उस संस्था के प्रधान से पूछा, "यह विचित्र निर्णय क्योंकर हुआ ?" प्रधान स्पष्टवक्ता थे, उन्होंने अतीव आकर्षक ढंग की स्पष्टवादिता के साथ

कहा, "हमने नवयुवक को इसलिए चुना है कि वह सन्तोषी स्वभाव का व्यक्ति है। हमें ऐसे महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं है, जिनकी तृष्णा प्रतिक्षण बढ़ती ही जाती है। ऐसे लोग तो जहाँ कहीं होते हैं, वहीं असन्तोष को उत्पन्न करते हैं।" इस घटना का मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मुझे छोटी अवस्था में ही सन्तोष के महत्त्व का ज्ञान करा दिया गया था। मैं कई ऐसी शिक्षाप्रद सूक्तियों व नीति-वाक्यों को दुहारा सकता हूँ, जो कि सन्तोष की महिमा को दिखलाते हैं। बड़े होने पर, मुझे मनोविज्ञान में रुचि हो गई। मैंने उसे पढ़ना आरम्भ किया, परन्तु प्रयोगात्मक साईंस के रूप में नहीं, वरन् एक वैयक्तिक व सामाजिक समता स्थापित करने वाली कला के रूप में। मैंने इस विषय की अनेक पुस्तकों को पढ़ा, परन्तु जिस पुस्तक ने मुझ पर सबसे अधिक प्रभाव डाला, उसमें सन्तोष की महिमा गाई गई। उसमें सुख-प्राप्ति का एक सुन्दर प्रयोग दिया हुआ था और उसका पहला आदेश था—'अपनी परिस्थिति को स्वीकार करो।' मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह एक प्रकार से सन्तोष-तत्त्व का ही प्रदर्शन है। इन सब बातों से मुझे यह निश्चय हो गया है कि यदि धर्म, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, उपयोगितावाद, मनोविज्ञान और व्यावहारिक अनुभव किसी एक बात पर सहमत हैं, तो वह है केवलमात्र आचार सम्बन्धी गुणों में सन्तोष की श्रेष्ठता। मैंने संतोष के सम्बन्ध में बहुत कुछ पढ़ा व सुना है, इसलिए संतोषी मनुष्यों के दर्शन के लिए मैं सदैव उत्सुक रहा हूँ। यद्यपि इस कार्य में मुझे प्रायः निराशा का मुख देखना पड़ा है, तो भी मैंने अपनी खोज को बन्द नहीं किया है। निराशाओं ने मुझ अपने प्रयत्नों को प्रबलतर बनाने के लिए प्रोत्साहन देने का ही काम किया है।

कुछ दिन हुए, मैं एक मित्र से मिलने को गया। वहाँ बातचीत के सिलसिले में उसने एक व्यक्ति के सम्बन्ध में, जिसे कि मैं थोड़ा-बहुत जानता था, यह शब्द कहे, "वह भी कैसा विलक्षण व्यक्ति है! आज के इस स्वार्थी व अवसरवादी लोगों से भरपूर संसार में वही एक ऐसा व्यक्ति है, जो कि अपने भाग्य से सर्वथा सन्तुष्ट है। वह अपना कर्त्तव्य करता है, और परिणाम को भगवान् के हाथ में छोड़ देता है। वह कहीं भी पहुँचने के लिए उतावला नहीं दीखता। सच पूछो तो, वह पहले ही अपने लक्ष्य पर पहुँच

चुका है।" मेरे मित्र के इन प्रगल्भ वचनों का मुझ पर तुरन्त प्रभाव पड़ा और मैंने कहा, "आओ, चलकर उससे मिलें। मुझे तो उसे देखे सालों बीत गए हैं। जो कुछ तुम कह रहे हो, उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मै उससे बहुत कुछ सीख सकता हूँ।" मेरे मित्र ने मुस्कराकर मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। फिर उसने कहा, "उसके घर तक पैर घसीटते जाने की क्या जरूरत है? मैं उसे यहीं बुला लेता हूँ। मुझे निश्चय है कि वह मेरे बुलाने पर अवश्य आ जाएगा। तब तुम उससे दिल खोलकर बातें कर लेना और उसके सन्तोष के रहस्य को जान लेना।" मैं उसके विचार से सहमत न हुआ, क्योंकि मुझे उसके इस व्यवहार में बड़प्पन की बू आ रही थी। मैं उसके पास एक विद्यार्थी के समान विनीतभाव से जाना चाहता था; क्योंकि उसने एक ऐसे गुप्त रहस्य को जान लिया था, जिसकी खोज में मैं अनेक निष्फल प्रयत्न कर चुका था। और फिर मैं उस व्यक्ति को उसके स्वाभाविक वातावरण में उसके ठिकाने पर ही देखना चाहता था।

हम उसके यहाँ पहुँचे, तो उसे घर पर ही पाया। कुछ समय पहले उसने अपने लिए एक छोटा-सा घर बना लिया था, और उसी में अपने परिवार के साथ रह रहा था। हमें देखते ही उसका मुख प्रसन्नता से चमक उठा। कई वर्षों के बाद मुझसे भेंट करके वह सचमुच ही बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मुझे मूर्त्तरूप में न देखा था, परन्तु उसे कभी-कभी मेरा समाचार मिलता रहता था, इसका कारण उसके मत में यह था कि मैं उससे बहुत दूर रहता था; परन्तु उसने फिर कहा, "यदि तुम इसी नगर में, जहाँ कि मैंने अपना घर बनाया है, रहते होते तो भी मेरे मन में घर से बाहर जाकर, तुमसे मिलने की इच्छा न होती। मुझे तो अब किसी प्रकार का शौक ही न रहा—लोगों से मिलने-मिलाने की तो रुचि ही जाती रही है।" इससे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो हमारे आगमन से उसे सच्ची प्रसन्नता नहीं हुई। हमारे प्रति उसका व्यवहार सौजन्यपूर्ण था, परन्तु क्या वह सचमुच हमें 'अवाञ्छित-अतिथि' नहीं समझता था? अस्तु, मैं यह जानना चाहता था कि उसमें कौन-से आध्यात्मिक परिवर्तन आ गए थे, जिससे वह ऐसी बातें करने लग गया था। मैं इस भेद को जानना चाहता था कि उसकी बातों का आधार उदासीनता है अथवा सन्तोषवृत्ति।

वह हमें अपने कमरे में ले गया, जिसकी छत नीची और आकार छोटा-सा था। उसमें दरवाजे व रोशनदान से होकर प्रकाश आता था, जो कि पढ़ने-लिखने के लिए पर्याप्त न था। उस कमरे में एक पुरानी कुर्सी, एक सैकेण्ड-हैंड मेज और एक बड़े पलंग के सिवा और कोई फर्नीचर न था। मेज पर कई वस्तुएँ इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं, और बिस्तर पर पुस्तकें, समाचार-पत्र, वस्त्र और दूसरी कई चीजें पड़ी थीं। मैंने उस भद्रपुरुष को उसकी युवावस्था में देखा था, और मुझे याद था कि उन दिनों वह सफाई पर जी-जान से लट्टू था। मुझे इस बात पर आश्चर्य था कि उसे यह क्या हो गया कि वह इस प्रकार की गड़बड़ चौथ में आनन्द अनुभव करने लगा। जब मैंने ध्यानपूर्वक उसपर दृष्टि डाली तो मुझे कई और बातों का पता चला। मैंने देखा कि उसके सिर के बाल बहुत बढ़े हुए थे, और उसने कई दिन से हजामत नहीं की थी। उसका धोती-कुर्ता धोने योग्य था, परन्तु उसका इधर कुछ ध्यान ही न था। उसकी ऐनक के मोटे-मोटे शीशे बहुत गन्दे हो रहे थे, और उसके जूतों में तस्मों व पालिश का सर्वथा अभाव था। इस प्रकार सभी वस्तुओं पर मलीनता की मुहर लगी हुई थी। कभी-कभी ऐसी बातें किसी व्यक्ति की निर्धनता अथवा असहाय अवस्था की सूचक होती हैं। परन्तु यहाँ ऐसा बात न थी। उसका जीवन-निर्वाह भली प्रकार हो रहा था। उसकी अपनी परन्तु थोड़ी नियमित आय में उसके दो लड़कों के अच्छे वेतन से पर्याप्त मात्रा में वृद्धि हो गई थी। कभी-कभी इस उपेक्षावृत्ति का कारण यह बताया जाता है कि व्यक्ति विशेष की जीवन सम्बन्धी उन्नत भावनाओं में अधिक रुचि है। कई मनुष्य आध्यात्मिक विषयों में इतने लीन हो जाते हैं कि उन्हें जीवन की छोटी-मोटी बातों से कोई लगाव नहीं रहता। वे अपने बनाव-सिंगार की ओर से सर्वथा उदासीन हो जाते हैं, और उन्हें अपने शरीर की अपेक्षा आत्मा का अधिक ध्यान रहता है। एक बार मुझे यह सूझा कि शायद यह सज्जन भी, अपने जीवन के अन्तिम भाग में किसी ऐसी वस्तु की खोज में जुटे हुए हैं। शायद इसीलिए उनकी यह धारणा हो गई थी कि सब प्रकार की महत्त्वाकांक्षा निष्फल है, और उन भौतिक पदार्थों का संग्रह, जिनके जुटाने में हम दिन रात एक कर देते हैं, निरर्थक है। क्या इसीलिए उसको 'सन्तोषी मनुष्य' की पदवी मिल गई थी ?

वहाँ कुछ देर ठहरने के बाद ही मुझे पता चल गया कि बातचीत में उस भद्रपुरुष के आन्तरिक भाव जान लेना संभव न था। वह प्राय: मौन रहता था, और हमारे प्रश्नों का उत्तर एकाध शब्द में ही दे देता था। कुछ समय के बाद मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि हमारे साथ भेंट करने में उसकी विशेष रुचि नहीं है। मैं चलने के लिए तैयार ही हो रहा था कि उसके एक लड़के ने आकर कहा, "चलिए, स्नान करके भोजन कर लीजिए।" उसके शब्दों ने मानो उसकी जिह्वा में विद्युत का संचार कर दिया। वह चिल्ला उठा "जरा ठहरो ! तुम लोग मुझे इस प्रकार क्यों सताते हो ? मुझे सदा इधर-उधर क्यों नचाते फिरते हो ? भला, मुझे सदैव यह बताने की क्या आवश्यकता है, कि अब मेरा स्नान करने का समय है और अब वस्त्र बदलने का ? मैं तो अपनी इच्छा के अनुसार काम करूँगा।" लड़के ने बड़े शान्त भाव से उसकी बातों को सुना, परन्तु वह कमरे से बाहर न गया। हाँ, हम चलने को उद्यत हो गए। परन्तु वह हमें ऐसा करने से रोकने लगा। पहले तो मानो उसकी जिह्वा का ताला लगा हुआ था, परन्तु अब वह बहुत वाचाल हो गया था। वह पुरानी स्मृतियों को पुनर्जीवित करने और विविध कथाएँ सुनाने लगा। हम वहाँ से कूच करके उसके वाक्-प्रवाह को बन्द करना चाहते थे, परन्तु वह हमें ऐसा नहीं करने देता था। उसके बेटे ने फिर आकर कहा, "पिता जी, आप क्यों प्रत्येक काम में टालमटोल से काम लेते हैं ? आप प्रतिदिन के साधारण कामों को भी उचित समय पर क्यों नहीं कर सकते ? सच पूछो तो, आप बड़े आलसी हैं। उसके यह शब्द सुनते ही मुझे यह सूझ पड़ा कि उस भद्रपुरुष की सन्तोष सम्बन्धी प्रसिद्धि केवलमात्र उसके आलस्य को छिपाने का ढोंग है। उसने किसी भी कार्य के करने या करवाने के प्रति उदासीनता इसलिए न धारण की थी कि वह कार्य उसके मत में निकम्मा था, वरन् इसलिए कि यत्न करना उसे भारी या कठिन प्रतीत होता था। परन्तु उसकी यह बात सराहने योग्य थी कि किस प्रकार से उसने अपने मित्रों में अपने दोषों को गुण रूप से दिखलाने में सफलता पा ली थी। इसमें सन्देह नहीं कि उस व्यक्ति में दिखलावे (प्रदर्शन) का गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था।

क्रय-विक्रय | १८

कई लोगों के लिए क्रय-विक्रय बड़ा रोचक काम है, परन्तु कुछ के लिए यह खेद का कारण होता है। कम से कम मुझे तो इसमें कभी रुचि नहीं हुई और मैं सदा यही यत्न करता आया हूँ कि कोई और व्यक्ति मेरे लिए यह काम कर दे। अपने विचार में मैं इस क्षेत्र में ऐसी ही चतुराई से काम लेता रहा हूँ जैसी कि बर्नार्ड शा एक बड़े क्षेत्र में प्रयोग में लाता था। उसी महान् आयरिश नाटककार ने हमें बताया है कि, पहले पहल स्वयं अखाड़े में कूदने के स्थान में, उसने किस प्रकार अपनी माता को जीवन-संग्राम में धकेल दिया था। मैं क्रय-विक्रय को इतना अरुचिकर समझता हूँ कि इसे सदैव दूसरों से करवा लेने का प्रबन्ध करता रहता हूँ। परन्तु मुझे विश्वास है कि क्रय-विक्रय के प्रति मेरी यह अनिच्छा किसी आत्मश्लाघा के भाव से उत्पन्न नहीं होती, वरन् यह इस विषय में मेरी असमर्थता पर निर्भर है। मुझे इस बात का निश्चय है कि इस बात में मैं बिलकुल अनजान हूँ। मैं अपने आपको जड़भरत ही कह लेता, परन्तु वह तो एक प्रकार से अपने आपको बेढंगी परिस्थिति में लाना होगा। एक वैज्ञानिक ने एक बार कहा था, "एक व्यक्ति किसी बात में वज्रमूर्ख होता हुआ भी, दूसरी में विलक्षण प्रतिभा वाला हो सकता है।" मैं तो किसी भी दिशा में श्रेष्ठतम बुद्धि वाला मनुष्य होने का गर्व नहीं करता—हाँ, यह मानता हूँ कि मैं कई बातों में निरा भोंदू हूँ।

इस विषय पर कुछ अधिक कहे बिना ही, मैं स्पष्ट रूप में यह स्वीकार करता हूँ कि जब कभी मैंने कुछ खरीदने का यत्न किया है, मैं इस काम में असफल ही रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि मुझमें कोई ऐसी बात है कि जिसे दुकानदार झट ताड़ जाते हैं। मुझे देखते ही वे समझ लेते हैं कि यह आसानी से ठगा जा सकता है। यह बात नहीं कि कभी-कभी वे मुझसे अपनी वस्तुओं

का बहुत अधिक मूल्य ले लेते हैं। सभी लोगों का अनुभव प्रायः ऐसा ही होता है और मैं इस नियम का अपवाद होने का गर्व नहीं करता। सच्ची बात तो यह है कि मैं अनेक बार एक अनावश्यक व अनुपयुक्त वस्तु को पा लेता हूँ। यदि मैं एक टोपी ख़रीदने जाता हूँ तो मैं अवश्य ही एक ऐसी टोपी ले आता हूँ जोकि मेरे लिए बहुत बड़ी होती है या बहुत ही छोटी। मैं इस विषय में अपनी त्रुटियों को जानता हूँ, इसलिए मैं अपनी कड़ी समालोचना नहीं करता। परन्तु दूसरे लोग इस विषय में कोई लिहाज़ नहीं करते। वे ऐसे व्यक्ति के साथ सहानुभूति प्रकट करने के स्थान में उसकी हँसी उड़ाते हैं। यह काम कुछ देर तक ही चलने वाला नहीं होता। जब तक वह उस टोपी को प्रयोग में लाता है, तब तक वे उसपर कटाक्ष करते रहते हैं। यहाँ तक कि जब तक वह उस टोपी को पहनता है, तब तक वह उसकी अयोग्यता की प्रतीक बनी रहती है। जब बड़ी आयु के लोग कुछ-कुछ लिहाज़ करने लगते हैं, तब भी बच्चे कटु आलोचना से नहीं टलते। हाँ, वे ऐसी बात ईर्ष्या से प्रेरित होकर नहीं करते, परन्तु यह बात दुहराई अवश्य जाती है। उन्हें यह जतलाने में आनन्द प्रतीत होता है कि एक व्यक्ति, जो श्रेष्ठ कहलाता है वह भी ऐसी भद्दी भूलें कर सकता है। अब वे इस प्रकार सोचने लगते हैं कि वयोवृद्ध व्यक्तियों की बुद्धिमत्ता की कहानियाँ सर्वथा निर्मूल व असत्य हैं। वे मन ही मन, गुप्त रूप से, ऐसी युक्तियाँ देने लगते हैं कि जो व्यक्ति छोटी बातों में भूल करता है, उसकी विवेक-बुद्धि बड़ी बातों में भी तो दोषपूर्ण ही होगी। इसलिए वे उसकी शिक्षा पर ध्यान नहीं देते और अपने किसी मामले में उसे टाँग नहीं अड़ाने देते। यह बात एक परिवार व किसी अन्य क्षेत्र के नियन्त्रण सम्बन्धी विचारों के सर्वथा विरुद्ध है, और उस श्रद्धा व मान के भावों की जड़ों पर कुल्हाड़ा लगाती है, जोकि छोटे व्यक्तियों की ओर से बड़े लोगों को प्राप्त होने चाहिएँ। इससे केवल इतना प्रकट होता है कि एक साधारण-सी त्रुटि भी किस प्रकार भयंकर परिणाम से युक्त हो सकती है।

यह बात नहीं कि मैं केवल अपनी टोपी के चुनाव में ही भूल करता हूँ—मैं तो समझता हूँ कि मैं सभी बातों में धोखा खाता हूँ। जहाँ तक कपड़ों व जूतों का सम्बन्ध है, मेरा रिकार्ड बहुत निराशाजनक है, और

फर्नीचर व घर के अन्य आवश्यक पदार्थों के सम्बन्ध में मैंने असंख्य भूलें की हैं। अपने अनुभव से यह जान लेने पर कि मैं क्रय-विक्रय के काम के सर्वथा अयोग्य हूँ, मैं ऐसे कामों से बचने का भरसक प्रयत्न करता आ रहा हूँ। परन्तु इस बात को न भूलना चाहिए कि मनुष्य खरीदने वाला जीव है। मेरे एक पूज्य सम्बन्धी ने मुझे एक बार बताया था कि जब कभी वह उदास होता था तब वह किसी पुस्तकों की दुकान पर जाकर कुछ पुस्तकें खरीद लेता था, और इस प्रकार अपनी उदासी के भाव से छुटकारा पा लेता था। जब कभी मैं उदासी की घाटी में यात्रा कर रहा होता हूँ, और निराशा के बादल आकाश में मँडरा रहे होते हैं, तो मैं दो प्रकार से उनसे छुटकारा पाने का यत्न करता हूँ—एक तो भ्रमण करने से और दूसरे बाज़ार का दौरा करके। जब मैं एकान्त में अकेला रहना चाहता हूँ, तो मैं किसी को साथ लिए बिना ही सैर के लिए निकल जाता हूँ; परन्तु जब मैं लोगों से मेल-मिलाप करने का इच्छुक होता हूँ, तो बिना किसी उद्देश्य के ही बाज़ार में चक्कर लगाने लगता हूँ। यह विचित्र बात है कि कोई न कोई वस्तु खरीदने की इच्छा किस प्रकार ऐसे अवसरों पर एक व्यक्ति को अपने वश में कर लेती है। जब मैं अकेले सैर पर निकलता हूँ तो भी मुझे सिगरेट, दियासलाई की डब्बी अथवा कुछ फल ख़रीदने की इच्छा होती है। मैं इन वस्तुओं को किसी शारीरिक आवश्यकता से प्रेरित होकर नहीं ख़रीदता, वरन् एक आन्तरिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए ऐसा करता हूँ। मैं सिगरेट इसलिए नहीं ख़रीदता कि मेरा सिगरेट केश ख़ाली होता है या दियासलाई की डब्बी इसलिए लेता हूँ कि मेरे पास तीलियाँ नहीं होतीं, बल्कि मुझे ऐसा करने में एक प्रकार की शान्ति प्राप्त होती है। इससे केवल यह बात सिद्ध होती है कि खर्च करना मनुष्य की एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है।

परन्तु केवल स्त्रियाँ ही समझदारी से खर्च करना जानती हैं। उनके लिए तो खर्च करना एक कला है, और क्रय-विक्रय में उन्हें अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है। यह एक विचित्र बात है कि वे किस प्रकार इस काम में घण्टों जुटी रह सकती हैं। यह भी अचंभे की बात है कि वे किस प्रकार मनचाही वस्तु की खोज में एक दुकान से दूसरी दुकान पर जाने को उदास

रहती हैं। वे उसी वस्तु को पाने का यत्न करती हैं, जो कि उनके दिल में घर कर चुकी होती है; और उसके स्थान में उससे अच्छी वस्तु से भी उन्हें सन्तोष नहीं होता। मुझे कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि वे दुकानदारों के लिए बहुत कष्टप्रद होती होंगी। परन्तु, मुझे इस बात का निश्चय है कि जो लोग अपनी वस्तुएँ बेचते हैं उनका ऐसा मत न होगा।

मुझे याद है कि एक बार ग्रीष्म ऋतु में, मैं अपने कुछ इष्ट मित्रों के साथ एक हिल स्टेशन पर ठहरा हुआ था। एक दिन प्रातःकाल ही मुझे बताया गया कि हम सबको कुछ अच्छा फर्नीचर (जिसके लिए कि वह स्थान प्रसिद्ध था) खरीदने के लिए जाना है। पहले तो मैंने अपनी अनिच्छा प्रकट की, परन्तु उनके बहुत कहने-सुनने पर, अन्त में, मैंने इस क्रय-विक्रय के साहसपूर्ण कार्य में उनका साथ देना स्वीकार कर लिया। हमारी संख्या सात थी—तीन पुरुष और चार महिलाएँ। हम एक फर्नीचर की दुकान से दूसरी में गए और दूसरी से तीसरी में—इस प्रकार हमारे चार घण्टे यों ही नष्ट हो गए। मैंने देखा कि इस जोखिम के काम में स्त्रियाँ प्रधान पात्र थीं, और पुरुष केवल निश्चेष्ट दर्शक। इस विचार से कि पुरुष कहीं ऐसा न समझें कि उनकी कोई बात ही नहीं पूछता, वे महिलाएँ कभी-कभी किन्हीं छोटी-मोटी बातों में उनकी सम्मति ले लेती थीं। पुरुषों के सुझाव प्रायः अप्रासंगिक व सारहीन थे, और यद्यपि वे स्त्रियाँ उनकी बातों को बुरा न मनाती थीं, तो भी ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे अपने मन में कह रही हों, 'अरे मूर्खो! तुम्हें भला फर्नीचर का क्या पता है, हम तो इसके सम्बन्ध में इतना कुछ जानती हैं, जितना कि तुम्हारी कल्पना में भी नहीं आ सकता।' मैंने सचमुच ऐसा अनुभव किया कि इस पार्टी के साथ चलने से मुझे बहुत कुछ सीखने का अवसर मिल रहा है। एक ओर तो मुझे अपनी मानसिक व्यवस्था में अज्ञान के एक नये क्षेत्र का पता चला, और दूसरी ओर मुझे इस बात का सन्तोष हुआ कि मैं उस अज्ञान के क्षेत्र की सीमा को तय करके कम कर रहा हूँ। मुझे फर्नीचर में काम आने वाली अनेक प्रकार की लकड़ियों और अनेक प्रकार के पालिशों का पता चल गया। मुझे डाइनिंग टेबल, डाइनिंग चेयर व सोफा सेटों की भिन्न-भिन्न आकृतियों से परिचय प्राप्त हो गया। मुझे यह ज्ञान हो गया

कि सोफों पर कपड़ा कैसे चढ़ाना चाहिए और एक पुराने फैशन के व नये ढंग के सोफा सेट में क्या अन्तर होता है। मुझे इस बात का अनुभव हो गया कि स्त्रियाँ इस काम में कितनी अधिक रुचि रखती हैं, और उनकी विवेक-बुद्धि कैसी अच्छी होती है। परन्तु लगभग चार घण्टे तक दुकानों का चक्कर काटने के बाद मुझे पता चला कि हमने कोई भी वस्तु नहीं खरीदी। इससे मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि यह सब खेल ही था या वास्तविक रूप में क्रय-विक्रय का काम। मैंने सोचा कि इस काम का तो कहीं अन्त ही न होगा, क्योंकि उन स्त्रियों को तो अभी सन्तोष न हुआ था और वे दूसरी दुकानों में भी फर्नीचर देखना चाहती थीं। अब तो मेरा धैर्य जाता रहा, और मैंने शिष्टाचार व विवेक-बुद्धि को तिलाञ्जलि देते हुए कहा, "अब तो हमें इस निकम्मे काम से छुट्टी मिलनी चाहिए। आओ, घर चलें और कुछ खाएँ-पिएँ।" यह धृष्टता की बात कहकर मैंने ऐसा अनुभव किया कि मानो मैंने कोई बड़ी वीरता का काम किया है। मैंने तो यह भी सोचा कि मैंने उनकी गति को रोक दिया है, परन्तु उनके मन में पश्चात्ताप का उदय न हुआ। यह जताने के लिए कि वे ही सर्वशक्तिमती थीं, उन्होंने दो और दुकानों पर जाने का आग्रह किया। इच्छा न रहते हुए भी, तीनों पुरुषों ने, बिना किसी विरोध के उनके निर्णय को स्वीकार कर लिया। अब हमने दो और दुकानों को छान मारा। परन्तु परिणाम अब भी वही रहा, जोकि पहले था। उन स्त्रियों को वहाँ भी कुछ पसन्द न आया, और उन्होंने प्रत्येक वस्तु को किसी न किसी कारण से अस्वीकार कर दिया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि हमारी मति सर्वथा मारी गई है। अपनी असफलता के भाव को दबाने के लिए मैंने एक सिगरेट केस खरीद लिया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो हम एक सभा के कार्यक्रम में भाग लेते रहे हैं, जहाँ कि घण्टों बड़े महत्त्वपूर्ण विषयों पर बहस करने के बाद भी हम किसी निर्णय पर न पहुँच सके थे, और सभा विसर्जित होने से पहले सभापति ने परस्पर झगड़ते हुए सदस्यों को किन्हीं अत्यन्त साधारण बातों पर एकमत होने की सफल प्रेरणा कर ली थी—केवल इसलिए कि हमें यह सन्तोष हो जाए कि हमारा समय व्यर्थ नहीं गया।

इन सब बातों से मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि क्रय-विक्रय का काम

प्रधानतया स्त्रियों का काम है। इसमें विवेक, धैर्य व चतुराई की आवश्यकता होती है, और यद्यपि इन गुणों पर स्त्रियों का विशेषाधिकार नहीं है, तो भी कोई व्यक्ति इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि कम से कम क्रय-विक्रय के क्षेत्र में तो वे पुरुषों की अपेक्षा इन गुणों को अधिक प्रकट करती हैं। परन्तु इससे भी अधिक यह बात स्पष्ट होती है कि इन गुणों का प्रयोग छोटे-छोटे उद्देश्यों के लिए भी करना पड़ता है। पुरुष महत्वपूर्ण काम करने में इन गुणों को चाहे प्रकट कर दे, परन्तु एक नकटाई, हैट या जूतों का जोड़ा लेने के लिए वह इनसे काम लेने का कष्ट न उठाएगा। इसके विपरीत स्त्रियों की छोटी-मोटी बातों में बहुत रुचि होती है। वे पैसे-धेले की बचत का पूरा-पूरा ध्यान रखती हैं। यद्यपि यह असम्भव नहीं कि वे रुपयों को उड़ाती हों। सच पूछो तो मैं इस लोकोक्ति को न्यायोचित नहीं समझता। 'अशर्फियाँ लुटें और कोयलों पर मुहरें।' मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि कोई भी व्यक्ति बड़ी-बड़ी धनराशियों को नष्ट करके, छोटी-छोटी रकमों को बचाने का यत्न करेगा। मैं तो यह समझता हूँ कि छोटी-छोटी बातों में बुद्धिमत्ता से काम लेने में ही बड़े कामों में बुद्धिमान बनने का रहस्य छिपा है। पुरुष और स्त्री में केवल यह भेद है कि स्त्री जीवन को ठीक सिरे से ग्रहण करती है, जब कि पुरुष उल्टे सिरे को लेकर चलता है। पुरुष बड़प्पन व विस्तार को अधिक महत्व देता है, परंतु स्त्री जीवन की छोटी-मोटी परंतु अनिवार्य बातों में अधिक रुचि रखती है। पुरुष दैनिक जीवन के क्रियात्मक जगत् की अपेक्षा, कल्पना के संसार में अधिक रहता है—यही कारण है कि उसे स्त्री की अपेक्षा अधिक बार असफलता का मुँह देखना पड़ता है। इस बात से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री क्रय-विक्रय के काम में क्यों इतनी निपुण होती है। उन्हें अपने पहनने के कपड़ों की बनावट, काम में लाने योग्य फर्नीचर की कीमत व घर में बनाई जाने वाली साग-सब्जी के गुण-दोष की चिन्ता लगी रहती है। पुरुषों की दृष्टि में ये साधारण बातें हो सकती हैं, परन्तु इस बात से कौन इनकार कर सकता है कि ये जीवन के लिए आवश्यक हैं। पुरुष प्रायः इन बातों पर विशेष ध्यान नहीं देते, परन्तु यह बात उनके लिए गौरव का कारण नहीं हो सकती। शायद पुरुष इन बातों की अपेक्षा काम में अधिक

रुचि रखते हैं। और इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि काम जीवन का एक मुख्य भाग है। परन्तु इस बात को भी समझ लेना चाहिए कि काम अधिकांश में अज्ञात रूप से ही जीवन की उन्नति में सहायक होता है। स्त्रियों की उन बातों में गहरी रुचि होती है, जो कि सीधे तौर पर जीवन की उन्नति से सम्बन्ध रखती हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्त्रियां क्रय-विक्रय के काम में इतनी अधिक रुचि क्यों रखती हैं। यह बात कि वे इस काम में बहुत समय लगाती हैं, केवल इस बात की सूचक है कि वह वस्तुओं के गुणों का विशेष ध्यान रखती हैं। जीवन में रुचि रखना और प्रत्येक बात में एक विशेष गुण की प्राप्ति के लिए यत्न करना यही दो बातें क्रय-विक्रय के धन्धे का आधार हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ इस कसौटी पर अधिक खरी उतरती हैं, और वे हमारे लिए ईर्ष्या का कारण होती हैं।

पुराना किला | १९

मैं वहाँ बहुत बेवक्त—रात के डेढ़ बजे पहुँचा। मैं पहली बार इस पिछड़े हुए नगर को जा रहा था, इसलिए मुझे सारी रात जागते ही बितानी पड़ी। मुझे भय था कि कहीं वह स्थान पीछे न रह जाए और मैं आवश्यकता से अधिक दूर न चला जाऊँ। एक स्टेशन से दूसरा स्टेशन कोई अधिक दूर न था, और जब कभी गाड़ी किसी स्टेशन पर ठहरती, तो मैं अपने अकेले साथी से उसका नाम पूछ लेता। ऐसा प्रतीत होता था कि वह उस प्रदेश से भली भाँति परिचित है। वह प्रत्येक बार मुझे स्टेशन का नाम बताने की कृपा करता और साथ यह भी बता देता कि मेरा लक्ष्यस्थान अभी ५-४ या ३ स्टेशन आगे है। मैं उसके सौजन्य पर मुग्ध था। परन्तु मुझे यह न समझ पड़ा कि वह जाग क्यों रहा है। वह जानता था कि उसके लक्ष्यस्थान पर गाड़ी प्रातः ७ बजे पहुँचेगी; तो उसे चाहिए था कि अपना बिछौना बिछाकर सोने का यत्न करता। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसका बिस्तरा बड़े करीने से होल्डाल में लिपटा हुआ था और वह उसे अपनी सीट पर रखकर उसके सहारे बैठा हुआ था।

मैंने मन ही मन सोचा, यह ऐसा क्यों कर रहा है? परन्तु मुझे इस बात का कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला। शायद उसे अनिद्रा का रोग था—इसीलिए वह सो नहीं सकता था। यह भी हो सकता था कि वह उन लोगों में से हो जिन्हें कि चलती गाड़ी में क्षण भर भी नींद नहीं आती, अथवा यह भी संभव था कि उसे कोई शारीरिक कष्ट हो जिसके कारण वह सुख की नींद नहीं सो सकता। शायद मैं उसके लिए कष्ट का कारण हो रहा था, और उसके लेटकर आराम करने में बाधा डाल रहा था। मेरे गाड़ी से उतर जाने के बाद, शायद वह आराम करने के लिए लेट जाए।

सच पूछो तो, इस विचार से मेरे अन्तरात्मा को एक ठेस-सी लगी। मैंने कई क्रूर पुलिस वालों के सम्बन्ध में सुना है कि वे विचाराधीन कैदियों को निद्रा से वंचित रखकर उनसे बलपूर्वक अपराध स्वीकार करवा लेते हैं। यह जानकर मेरा हृदय काँप उठा कि मैं उस भद्रपुरुष को निद्रा से वंचित रखने का निमित्त हो रहा था। फिर मुझे यह सूझा कि शायद वह सज्जन देर तक जागने का अभ्यासी हो, और उसे इसी अभ्यास का दण्ड मिल रहा हो। इस विचार से मुझे कुछ सान्त्वना मिली, क्योंकि इससे मुझे अपने उत्तरदायित्व से छुटकारा मिल गया। परन्तु एकाएक एक और विचार मेरे मन में उठा। मुझे सन्देह हुआ कि वह भद्रपुरुष शायद एक बड़ी धनराशि अथवा कोई बहुमूल्य वस्तुएँ अपने पास रखता है, इसलिए लूटे जाने के भय से सोता नहीं है। यह शायद एक चतुराई पूर्ण अनुमान था, जिसके लिए कोई भी व्यक्ति अपनी बुद्धिमत्ता पर अभिमान कर सकता था, परन्तु इसके गूढ़ अर्थ मेरे लिए प्रशंसनीय न थे। मेरा हृदय इस विचार से काँप उठा कि उसने मुझे एक भद्रपुरुष के स्थान में कुछ और समझा है।

गाड़ी अपनी मस्तानी चाल से धीरे-धीरे चली जा रही थी। मुझे थोड़ी दूर ही जाना था, परन्तु गाड़ी च्यूँटी की चाल से चली जा रही थी और कुछ ही क्षण के बाद सभी छोटे-बड़े स्टेशनों पर ठहर जाती थी। प्रत्येक पड़ाव पर ऐसा प्रतीत होता कि अब गाड़ी चलने का नाम न लेगी। ऐसा जान पड़ता था कि मानो स्टेशन के सभी अफसर पास के ग्रामों में सवारियों को इकट्ठा करने के लिए चले गए हैं। अधिकांश स्टेशनों की इमारत दो कमरों वाली थी, और उसमें धुंधला-सा प्रकाश था। यहाँ के वातावरण की उदासी को मुसाफिर लोग दूर करते थे, क्योंकि वे इस परिस्थिति को हँसी-खुशी से टाल देते थे। वे एक दूसरे को ऊँचे स्वर से पुकारते थे, और गाड़ी में चढ़ते समय कोई गीत गुनगुनाने लगते थे। उन दिनों जब कि गाड़ियाँ ठसाठस भरी होती थीं, किसी ऐसी लाइन पर यात्रा करना, जहाँ कि गाड़ी में इतने कम मुसाफिर हों, एक अद्भुत घटना के समान प्रतीत होता था।

परन्तु उस खिन्नता के भाव को दूर करने के लिए, जो कि स्वतः ही

मनुष्य के हृदय में घर कर जाता है, वहाँ कुछ पारितोषिक का भी प्रबन्ध था। रात चाँदनी थी, और खिड़की से बाहर झाँकने पर बालू के विस्तृत मैदान दीख पड़ते थे, जिनमें कहीं-कहीं छोटे वृक्ष लगे हुए थे, जो कि प्रकृति की प्रचुरता के स्थान में उसकी कृपणता का परिचय देते थे। कभी कोई छोटा-सा गरीबी का मारा गाँव दीख पड़ता था, जो कि चन्द्रमा के प्रभाव से एक विशेष सौन्दर्य को प्राप्त कर लेता था। सूर्य के प्रकाश में तो ये गाँव और ही ढंग के दीख पड़ते होंगे। कुत्तों का परछाइयों व चन्द्रमा को देखकर भौंकने व हू-हू करने का स्वर एंजिन की छक-छक की अनवरत ध्वनि को भंग कर रहा था। लोगों का कहना है कि आकाश के अपने अनेक रहस्य हैं, परन्तु मुझे उनको जानने का ढंग नहीं आता। यात्रा के खेद को दूर करने के लिए कभी-कभी आकाश की ओर देख लेता था, परन्तु मुझे उसके किसी रहस्य का पता न चला।

निदान, गाड़ी ने मुझे मेरे लक्ष्यस्थान पर पहुँचा दिया। यह स्टेशन इस लाइन के दूसरे स्टेशनों की अपेक्षा अधिक लम्बा-चौड़ा व प्रकाशयुक्त था। परन्तु यहाँ कुलियों का नाम-निशान भी न था। मैं जानता था कि यहाँ गाड़ी काफी देर ठहरेगी, अतः मुझे किसी प्रकार की चिन्ता न हुई। इसी समय मुझे कुछ मनुष्यों का झुण्ड दीख पड़ा—उनमें से प्रत्येक के हाथ में लालटेन थी। मैंने अनुमान लगा लिया कि वे मुझे लेने के लिए ही आए हैं। उनमें से किसी ने मुझे इससे पहले न देखा था, इसलिए वे मुझे पहचान न सके। फिर उनमें से एक साहसी व्यक्ति ने आगे बढ़कर मुझसे मेरा नाम पूछा। जब उन्हें विश्वास हो गया कि मैं वही व्यक्ति हूँ जिसे कि वे खोज रहे थे, तो वे मुझे घेरकर खड़े हो गए। मुझपर इस बात का बहुत प्रभाव पड़ा कि वे लोग सर्दी की इस ठण्डी रात में, अपने गुदगुदे बिछौनों को छोड़कर, मेरे स्वागत के लिए आ पहुँचे थे। उन्होंने यह न सोचा था कि ऐसा करने की क्या जरूरत है। मेरा उनमें से एक-एक के साथ परिचय कराया गया। इन शिष्टाचार के भद्दे नमूनों को देखकर मेरे हृदय में दया उमड़ आई। वे प्रतिष्ठित होने का दम भरते थे, यद्यपि उनके पास उचित साधन न थे। वे निर्धन होते हुए भी स्वाभिमानी थे। उनके बैंक के हिसाब में एक धेला भी न था, यद्यपि उनके मस्तिष्क ज्ञान से भरपूर थे।

वे बेचारे निर्धन अध्यापक थे—रियासत के किसी भी अधिकारी की अपेक्षा अधिक गरीब थे।

अस्तु, मुझे सबसे अधिक चिन्ता इस बात की थी कि मुझे कोई ऐसा ठिकाना मिल जाए जहां कि मैं रात्रि के शेष भाग को सोकर बिता सकूं। मैंने उनसे पूछा, "क्या यहाँ स्टेशन पर वेटिंग रूम है?" उन्होंने कहा, "हाँ जी, परन्तु यहाँ आपको खास आराम न मिलेगा।" परन्तु मुझे आराम नहीं चाहिए था—मैं तो केवल एक चारपाई चाहता था, जिसपर मैं लेट सकूं। इसलिए मैंने उन्हें कहा, "आप रात भर के लिए मुझे यहीं वेटिंग रूम में आराम करने दें। प्रातःकाल कुछ मित्र यहाँ आकर मुझे नगर में लिवा ले जाएँ।" परन्तु उन्होंने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार न किया। उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा, "हमने आपके ठहरने के लिए पुराने किले में प्रबन्ध किया है। आप कृपया वहीं चलने का कष्ट करें।" मैंने झुँझलाकर कहा, "पुराना किला कितनी दूर है?" "बस, पन्द्रह मिनटका रास्ता है।" उनमें से सबसे अधिक साहसी व्यक्ति ने कहा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह विधाता का विधान है कि मैं उस किले में—चाहे एक दिन के लिए ही क्यों न हो—रहूँ और मुझे इसके आगे सिर झुकाना ही उचित है। अब मैं स्टेशन से किले की ओर चल पड़ा। मैं नहीं जानता कि मुझे वहाँ पहुँचने में कितना समय लगा—हाँ, पन्द्रह मिनट से तो कुछ अधिक ही लगा होगा।

रात के समय किले का निरीक्षण करना सम्भव न था—मैं केवल इतना देख सका कि कभी यह किला एक बड़ी भारी इमारत रहा होगा। अब तो यह एक खण्डहर के रूप में था—इसके वास्तविक विस्तार का $\frac{1}{4}$ भाग ही बच रहा था, और वह भी टूटी-फूटी अवस्था में था। ऊपर की मंजिल के कमरे तक, जहाँ मुझे सोना था, पहुँचने के लिए मुझे कई सीढ़ियों पर से होकर जाना पड़ा। वह एक हाल कमरा-सा था, और मेरी अकेली व छोटी-सी चारपाई उसके विस्तार की तुलना में अनाथ-सी प्रतीत होती थी। इस अवसर पर जिस दरी का प्रबन्ध किया गया था, वह इस कमरे के लिए बहुत छोटी थी। वहाँ एक मेज़ पड़ी थी, जिसमें सौन्दर्य नाम को भी न था। हाल के साथ ही एक छोटा-सा कमरा था, जिसे बाथरूम बना दिया गया था। यहाँ मेरा चित्त कुछ अशान्त-सा था—मुझे तो कुछ-कुछ भय भी प्रतीत होने

लगा। इस रहस्यमय अपरिचित स्थान में रात्रि के कुछ घण्टे भी अकेले बिताना मुझे स्वीकार न था मैंने कहा, "साथी के रूप में दो व्यक्तियों को यहाँ रहने दें।" उन्होंने मेरी बात को मान लिया। मेरे विचार में उन्होंने मेरी इस माँग के वास्तविक कारण को न समझा था। मुझे उनके साथ की इतनी आवश्यकता न थी, जितनी कि उनके द्वारा अपनी रक्षा की।

मैं आराम करने के लिए लेट गया, परन्तु नींद मुझसे कोसों दूर थी। मैंने नींद लाने के सभी प्रसिद्ध उपायों का प्रयोग किया, परन्तु उनसे कुछ लाभ न हुआ। वहाँ के अपरिचित वातावरण में मैं घबरा-सा गया, और कई विलक्षण विचार मेरे मन में आए। मैंने ऐसा अनुभव किया कि मानो, मैं एक विद्रोही सरदार हूँ, जिसे किले में कैद कर दिया गया है। फिर मुझे ऐसा भान हुआ कि मैं एक ऐसा कैदी हूँ, जोकि अपने लिए दण्ड की आशा की प्रतीक्षा कर रहा है। फिर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं एक संदेहास्पद राजनैतिक कार्यकर्त्ता हूँ, जिसे अनिश्चित काल तक इस किले में नज़रबन्दी की दशा में रखा जाएगा। इस अन्तिम विचार से उदासीनता के विचारों की एक लड़ी-सी उत्पन्न हो गई। क्या इन्होंने यह कमरा मुझे एक दिन के लिए ही दिया है? क्या मुझे कल एक छोटी-सी अँधेरी कोठरी में भेज दिया जाएगा? वह कोठरी अवश्य ही तहखाने में होगी, जहाँ कि थोड़ा-सा प्रकाश दीवार के छेद में से होकर पहुँचेगा। वहाँ कोई चारपाई न होगी, फर्श पर केवल सड़ा-गला फूस बिछा होगा और चूहों की भाग-दौड़ से क्षण भर भी नींद न आ सकेगी। मुझे दिन-रात पहरे में रहना होगा, परन्तु पहरेदार मुझसे बात न करेंगे···और मैं उसी कोठरी में शोक में घुल-घुलकर मर जाऊँगा···।

मैं नहीं कह सकता कि मैं कब तक इन्हीं विचारों में उलझा रहा। मेरी एकमात्र यह अभिलाषा थी कि दिन होते ही मैं वहाँ से कूच कर जाऊँ। मेरे साथी, जिन्हें मेरे भयावने स्वप्नों की कुछ खबर न थी, गाढ़ी नींद के मजे ले रहे थे।

प्रातःकाल उठा तो ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे कुछ ज्वर-सा है, और मेरा मन कुछ घबराया हुआ व अशान्त है। चाय के प्याले से भी मुझे कोई प्रसन्नता न मिली। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे मैं एक विचित्र देश की

यात्रा करके लौटा हूँ, जहाँ कि मैंने बहुत-सी विचित्र बातें देखी थीं। मैंने एक पुस्तक से—जो कि मुझे यात्रा में बहुत रोचक प्रतीत हुई थी—अपना मन बहलाने का यत्न किया, परन्तु वह मेरे लिए आकर्षक न हो सकी। इसी समय कुछ व्यक्ति मुझसे मिलने के लिए आए। मैंने उनसे किले के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की। उन्होंने कहा, "यह किला २०० वर्ष पुराना है, और कई लोगों के अधिकार में रह चुका है।" उन्होंने मुझे उसकी चहारदीवारी व उसके बाहर की खाई दिखलाई। फिर उन्होंने उसकी मुंडेरें व बुर्जियाँ दिखलाईं, जो कि इस समय नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थीं। उन्होंने मुझे बताया कि किले के एक भाग में थाना है, दूसरे में हवालात, और तीसरे का प्रयोग रेस्ट हाउस के रूप में होता है। जिस कमरे में मैंने पिछली रात बिताई थी, उन्होंने उसके ऐतिहासिक महत्त्व की सूचना मुझे दी। किले के गवर्नर उसका प्रयोग दरबार के रूप में करते थे। उन्होने उनमें से कुछ एक के नाम मुझे बताए। मुझे यह जानकर बहुत आश्चर्य व दुःख हुआ कि उन सबकी अपने शत्रुओं के द्वारा हत्या हुई थी। फिर उन्होंने मुझे बताया कि उनमें से अधिकांश की हत्या उसी कमरे में की गई थी, और हत्यारे साथ वाले कमरे में से होकर ही वहाँ पहुँचते थे। उनमें से एक ने तो, असावधानी की अवस्था में, यह भी कह दिया कि इस कमरे में भूत रहते हैं, यद्यपि दूसरों ने इस बात का प्रतिवाद कर दिया। मुझे उनकी बातों पर विश्वास न हुआ, परन्तु फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस स्थान में कुछ गड़बड़ अवश्य है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि मैंने वहाँ ठहरने का विचार छोड़ दिया और उसी दिन सायंकाल मैं वहाँ से चल पड़ा। दूसरी बातों के अतिरिक्त, किले ने भी मेरे हृदय में ग्लानि व घृणा का भाव उत्पन्न कर दिया था।

साँप | २०

एक सितम्बर को मै उत्तर भारत के एक हिल स्टेशन पर गया हुआ था। उस 'शान्तिप्रद स्थान' में यह मेरा पहला जाना न था। जब मै पहली बार वहाँ पहुँचा था तो मुझे उस स्थान से पूरी-पूरी घृणा हो गई थी, और मैंने वहाँ से शीघ्र ही कूच कर दिया था। मेरे कई अनुभवी मित्रों ने जिन्होंने बहुत-सी यात्राएँ की थीं, मुझे बताया कि वह स्थान उन्हें स्विट्जरलैंड की याद दिलाता था। वे आसपास के घने जंगलों से ढँके हुए पर्वतों की ओर संकेत करके मुझे कहते कि विविध प्रकार के वृक्षों का ऐसा समुदाय वास्तव में एक विलक्षण दृश्य उपस्थित करता है। वे वहाँ के निर्मल आकाश की प्रशंसा करते थे, परन्तु मै जब तक वहाँ रहा, वर्षा लगातार होती रही। मैं जब कभी आकाश की ओर देखता, वहाँ काले-काले भयावने बादल ही दिखाई देते। लगातार बारिश से मुझे कुछ ऐसी घृणा हो गई थी कि उससे दूसरी बातों में भी मेरी रुचि कम हो गई। मेरे मित्र वहाँ के सुन्दर नक्षत्रों से जगमगाती रात्रि की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। परन्तु मेरे लिए वहाँ इतनी अधिक सर्दी थी कि रात के समय बाहर जाकर आकाश की सुन्दरता—चाहे वह कितनी अद्भुत हीं क्यों न हो—का अवलोकन करना एक बड़े साहस व सहनशीलता का काम प्रतीत होता था। मैं अपने आपसे यह प्रश्न पूछे बिना न रह सका कि वह पर्वतीय स्थान मेरे लिए उतना ही आनन्ददायक क्यों न था जितना कि मेरे मित्रों के लिए। बात यह थी कि उनमें से बहुत-से लोग केवल उन बातों को दुहरा देते थे, जो कि उन्होंने दूसरों से सुनी होती थी। उनके लिए पर्वत, आकाश और रात्रि का

कोई विशेष महत्त्व न था। उन्हें वर्डस्वर्थ[1] के समान पर्वतों से प्रेम न था, न ही कालिदास[2] के समान बादलों से स्नेह। नक्षत्र उन्हें कीट्स[3] के समान मोहित न करते थे। वे प्राकृतिक प्रेमियों का समुदाय न होकर केवलमात्र मौज मनानेवाले लोग थे। इस हिल स्टेशन के प्राकृतिक सौंदर्य से उनके हृदय में कोई उल्लास न होता था, वे तो केवल इस विचार से प्रसन्न हो जाते थे कि उन्होंने एक हिल स्टेशन पर कुछ काल के लिए मौज मनाई है।

जब मैं दूसरी बार वहाँ पहुँचा, तो वायुमण्डल स्वच्छ था। पर्वत अपनी प्राकृतिक सुन्दरता से शोभित हो रहे थे, और आकाश थोड़ा-बहुत निर्मल था। चन्द्रमा अधिकाश में निर्मल आकाश में चमक रहा था, और बाह्य जगत् में कोई ऐसी बात नहीं थी, जो कि मेरे चित्त को उदास करती। सूर्य का उज्ज्वल प्रकाश मेरे शरीर में प्रवेश करके मेरे हृदय को उष्णता पहुँचा रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो प्रकृति के सभी तत्व परस्पर मिलकर मेरी स्थिति को आनन्दप्रद बनाने का यत्न कर रहे हैं। परन्तु वह घर जिसमें मैं ठहरा हुआ था बहुत सीला, अन्धेरा व उदासीनतापूर्ण था। दूसरे किरायेदारों को वह घर पसन्द था, परन्तु मेरे लिए तो वह जीती-जागती

१. वर्डस्वर्थ (१७७०–१८५० ई०) : अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध रोमांटिक कवि। वह प्रकृति का पुजारी था, और प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ में एक गुप्त सौन्दर्य का दर्शन करता था। उसकी धारणा थी कि प्रकृति एक चेतन सत्ता है जोकि मनुष्य को, उसके कल्याण के लिए, आध्यात्मिक संदेश देती है।

२. कालिदास (प्रथम शती, विक्रमीय): भारत सम्राट् विक्रमादित्य की राजसभा का महाकवि व प्रमुख नाटककार। संस्कृत के कवियों व नाटककारों में इन्हें सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

३. कीट्स (१७९५–१८२१) : प्रसिद्ध रोमांटिक कवि। वह सौन्दर्य का पुजारी था। उसका मन्तव्य था कि सौन्दर्य और सत्य परस्पर विनिमय के योग्य शब्द हैं। वह उनमें भेद न मानता था। उसका विश्वास था कि 'एक सुन्दर वस्तु सनातन आनन्द को देने वाली होती है।' उसकी कविताओं में अनेक प्रभावशाली काव्यमय चित्र पाए जाते हैं।

कब्र के समान था। यह स्थान उन लोगों के लिए उपयुक्त था, जो कि सर्दी को गर्मी की अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं, अंधेरे को प्रकाश से अधिक चाहते हैं और एकान्त से मनुष्यों के संग की अपेक्षा अधिक प्रेम करते हैं। वह तो सम्मिलित प्रकाश व अन्धकार से युक्त प्रदेश था—सर्दी व उदासी से भरपूर। उस स्थान का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा। मेरा चित्त उदास ही नहीं अस्वस्थ-सा हो गया था। इस विषाद के भाव ने यहाँ रहते हुए मुझे घेर लिया था, और मैं घर से बाहर रहकर भी इस उदासी के भाव से छुटकारा न पा सका। यह जानते हुए कि मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जिसकी आत्मा इन परिस्थितियों से ऊपर नहीं उठ सकती—एक ऐसा व्यक्ति जो कि अतीव दुर्बलचित्त है, मैंने उस घर को ही नहीं, उस हिल स्टेशन को भी छोड़ देने का निश्चय कर लिया। इस बात में मैं आदर्श अंग्रेज से—जो कि अपनी अन्तरात्मा की परिस्थिति से ही प्रभावित होता है—बहुत पिछड़ा हुआ था।

यह कुछ आश्चर्य की बात प्रतीत होती है, परन्तु मैं तीसरी बार फिर उस हिल स्टेशन पर पहुँचा। टैनीसन[1] ने—जोकि साधारण सचाइयों को कलात्मक ढंग से कहने में कुशल था—एक स्थान में कहा है कि 'एक व्यक्ति अपने कर्त्तव्य पालन में, दो बार असफल होने पर भी, तीसरी बार सफल हो सकता है।' शायद मैंने इस वाक्य को अपने जीवन के भावुकता-मय काल में सुना था, और अब, मानो अज्ञात रूप में मैं इस हिल स्टेशन के विषय में इसकी परीक्षा कर रहा था। मेरा अर्धचेतन मस्तिष्क मानो मुझे कह रहा था, 'इस हिल स्टेशन ने तुम्हें दो बार निराश किया है, परन्तु अब की बार ऐसा न होगा।' इस बार यह तुम्हारी इच्छा को पूरा करेगा।' सो, मैं वहाँ अपने एक मित्र की हर्षजनक संगति में पहुँचा। ऋतु बहुत मनोहर था, मित्र मण्डली बहुत रोचक थी, निवास स्थान सुखप्रद था, और सभी वस्तुएँ आकर्षक प्रतीत होती थीं। परन्तु मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि भोजन बहुत ही बुरा है। यद्यपि मनुष्य जीवन की प्रधान आवश्यकता

---

१. टैनीसन (१८०९-१८९२ ई०) : विक्टोरिया के राज्यकाल में इंगलैंड का राजकवि व प्रमुख काव्यकार।

की सामग्री, भोजन, उत्तम प्रकार की न थी, फिर भी इस कारण मुझे इस स्थान से घृणा न हुई। मैंने अपने आपको इस प्रकार समझाया, 'सच पूछो तो, पूरा सुख तो किसी मनुष्य के भाग्य में है ही नहीं। यदि सभी काम ठीक-ठाक होते चले, तो मनुष्यों की जीवन में रुचि बहुत कम हो जाए। कुछ न कुछ ऐसी बातें चाहिएँ जिनके सम्बन्ध में मनुष्य असन्तोष प्रकट कर सके।' मैं भोजन की शिकायत होने पर भी वहाँ टिक गया, और इससे मुझे कोई विशेष कष्ट न हुआ।

इस प्रकार दिन बीतते गए, और यद्यपि वह भोजन रुचिकर न था, मुझे उससे कोई हानि भी न पहुँची। एक दिन प्रातःकाल मैं वहाँ की एक कुछ कम भीड़-भड़क्के वाली सड़क पर सैर के लिए निकला। मैं शक्तिवर्धक व्यायाम व उत्साहजनक प्रभात पवन के कारण अतीव प्रसन्नता अनुभव कर रहा था; तभी मेरे मित्र ने चिल्लाकर कहा, "वह देखो।" यह 'देखो' शब्द बहुत साधारण-सा था। इसने न केवल अंग्रेजी भाषा से मेरे प्रथम परिचय की याद को ताजा कर दिया, परन्तु उसके स्वर में कुछ ऐसी बात थी कि जिससे मैं चौंक उठा। मैंने तुरन्त भाँप लिया कि कोई भय का कारण उपस्थित हुआ है। और मेरा मित्र मुझे सावधान कर रहा है। मुझे इस बात का केवल धुँधला-सा ज्ञान हुआ, जब तक कि मेरे मित्र ने अपनी उंगली को आगे बढ़ाकर सड़क के पार जाती हुई किसी वस्तु के प्रति संकेत न किया। तब मुझे पता चला कि एक सरकते हुए साँप को देखकर वह चिल्ला उठा। यदि मैंने शहर की किसी सड़क पर एक साँप को सरकते हुए देखा होता तो मैं अवश्य ही वहाँ लोगों की एक भीड़ इकट्ठी कर लेता। यह कहना कठिन है कि वे उस समय कैसा व्यवहार करते। उनमें से कुछ लोग शायद डरकर भाग जाते, और कुछ साहसी व्यक्ति शायद साँप का पीछा करते। सच पूछो, तो एक जीवित साँप का किसी शहर के घनी आबादी वाले भाग में इच्छानुसार विचरना अवश्य ही एक मनोहर दृश्य होगा। वह बहुत-से लोगों के लिए उत्तेजना का कारण होगा। परन्तु मेरे व मेरे मित्र के लिए तो वह साँप केवल एक उत्सुकतापूर्ण विचार का विषय था। उसकी उपस्थिति में हमारा व्यवहार उन लड़कों का-सा न था, जो कि भयभीत होकर पत्थर मारना आरम्भ कर देते हैं। हमारा व्यवहार उन नौजवानों का-सा भी न था, जो कि

अपना पौरुष दिखाने के लिए, लाठियाँ लेकर उसका पीछा करते हैं। हम न चीखे न चिल्लाए, और न ही हमने किसी प्रकार की घबराहट या भय को प्रकट किया। इसका यह अर्थ नहीं कि हम दोनों बड़े शूर-वीर थे, नेल्सन[1] के समान हमारा भय से कभी परिचय न हुआ था। यह एक प्रकार से परस्पर आक्रमण न करने की मौन सन्धि थी। वह साँप, हमसे छेड़छाड़ किए बिना ही, अपनी राह चला गया, और हम उससे खासी दूरी पर खड़े रहे। हम उन शान्तिप्रिय पुलिस वालों के समान थे जो कि एक शान्तिमय सत्याग्रहियों के जलूस को चुपचाप गुजरने देते हैं।

हाँ तो, मेरे जीवन में यह पहला अवसर था, जबकि मैं एक साँप के इतना निकट पहुँचा था। मेरी दादी मुझे बताया करती थी कि हमारे पैतृक घर की निचली मंजिल के एक कमरे में एक बड़ा-सा काला नाग रहता था। जब मैं पूछता, "क्या आपने उसे देखा है ?" तो वे कहतीं, "नहीं, बिल्कुल नहीं। परन्तु सास ने मुझे बताया था कि वह यहाँ रहता है।" एक बार प्रेम के आवेश में, उन्होंने मुझे यह भेद बताया कि वह साँप एक बहुमूल्य—अनगिनत धनराशि वाले खजाने की रक्षा कर रहा था। मैं समझता हूँ कि यह बात हमारे कुल में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप में चलती आई है, परन्तु हमारे वंश में कोई ऐसा पराक्रमी व्यक्ति नहीं हुआ जो कि इस दैत्य को मारकर इस खजाने को छीन लेता। यदि कोई व्यक्ति इस बात का बीड़ा उठाए तो मैं अवश्य ही उसके पराक्रम का वर्णन करने के लिए एक अमर काव्य की रचना कर डालूँ। परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे भाग्य में ऐसे व्यक्ति से मिलना नहीं लिखा है। तो मुझे इस प्रकार की अमरता से वंचित ही रहना होगा।

परन्तु, सच पूछो तो इस साँप ने मुझपर कुछ जादू-सा कर दिया था। मेरे लिए उसमें एक ऐसा ही आकर्षण था, जैसा कि कुछ मनुष्यों को स्त्रियों में प्रतीत होता है। दूर से ही साँपों की प्रशंसा करना भयरहित है, परन्तु

---

१. नेल्सन : इंगलैंड के समुद्री बेड़े का अध्यक्ष, परम साहसी व निर्भय वीर। फ्रांस के सम्राट नेपोलियन की विश्व-विजय सम्बन्धी सभी आशाओं को इसने धूल में मिला दिया था।

उनके अति निकट जाना भग का कारण है। उनमें वैसी ही चंचलता दीख पड़ती है, जैसी कि प्राय: स्त्रियों में पाई जाती है, और जिसके द्वारा वे पुरुषों को निराश करती हैं। परन्तु यह साँप उन नागों में से न था, जिनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे अपने शिकार पर जादू-सा डाल देते हे, और फिर उसे मृत्यु के मुख में खींच लेते हैं। वह दुबले-पतले शरीर वाला खासा लम्बा और हरे-से रंग का था। उसकी चमड़ी सूर्य के प्रकाश में चमचमा रही थी, और वह अपनी जिह्वा को बड़ी तेजी से अन्दर-बाहर कर रहा था। वह सिर उठाए बड़ी तेजी से भागा जा रहा था। मै उसकी चाल-ढाल को तब तक देखता रहा, जब तक कि वह जंगल में जाकर छिप न गया।

मुझे अपने एक मित्र की बात याद आई, जो कि उसने कई वर्ष पहले कही थी। हम एक पार्टी पर इकट्ठे हुए थे। वहाँ एक नवयुवती ने सभी अभ्यागतों की दृष्टि को अपने वश में कर रखा था। मैं यह न समझ सका कि वह ऐसी सर्वप्रिय क्यों थी। उसमें सुन्दरता नाम को भी न थी—हाँ, वह हंसमुख अवश्य थी। वह प्रसन्नचित्त, विनोदी स्वभाव वाली व फैशनेबुल थी। उसकी सभी बातें कृत्रिम प्रतीत होती थीं, और उसकी सभी चेष्टाएँ दूसरों पर प्रभाव डालने की इच्छा पर निर्भर थीं। एक नवयुवक, जो कि बहुत ही सुन्दर था, उस पर लट्टू हो रहा था। वह विदेश-यात्रा कर चुका था और अपने मित्रों को अपने कारनामे सुनाता हुआ कभी थकता न था। वह धनी था, विद्वान् था और बड़े अच्छे स्वभाव का व्यक्ति था। मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि वह रोमियो[1] के समान सुन्दर युवक उस लड़की पर क्यों मुग्ध हो रहा है, जिसे हम किसी अर्थ में भी रूपवती नहीं कह सकते। परन्तु मेरे मित्र ने एक ही बात में मेरे सब सन्देह उड़ा दिए। उसने कहा, "क्या तुम देखते नहीं हो कि उसमें ऐसा कुरूप सौन्दर्य है जैसा कि एक साँप में पाया जाता है?" इस उत्तर को सुनकर मैं चकित हो गया। कुरूपता और सौन्दर्य—दोनों इकट्ठे कैसे रह सकते हैं? यह तो

---

१. रोमियो : शेक्सपियर के प्रसिद्ध दु:खान्त प्रेम-नाटक 'रोमियो एण्ड जूलियट' का नायक।

दो परस्पर विरोधी शब्द हैं। मेरे मित्र का भाव शायद यह था कि यद्यपि उसमें शारीरिक सौन्दर्य न था, फिर भी उसमें वह अनिर्वचनीय गुण था जिसे रमणीयता कहते हैं।

परन्तु उस साँप की रमणीयता में तो कुरूपता का लेश मात्र भी न था। उसकी हरी चमड़ी को देखकर मुझे जंगल के हरे-हरे वृक्षों की याद हो आती थी। उसका दुबला-पतला शरीर इस बात का प्रमाण था कि उसका भोजन संतुलित और उसका स्वभाव सुघड़ था। वह एक मोटा-ताजा, फूले हुए शरीर वाला साँप न था—वह तो अपनी भरपूर जवानी में था, और उसकी चाल-ढाल बड़ी गौरवयुक्त व सुन्दर थी। उसकी धागे की-सी पतली जिह्वा एक ऐसे तेज व नुकीले तीर के समान थी जिसका प्रयोग राजपूत प्राचीन काल में किया करते थे। उसकी आँखें छोटी और चमकीली थीं। यह सच है कि वह भूमि पर रेंग रहा था, परन्तु उसने अपना सिर ऊँचा ही रखा था। वह उन लोगों के समान था, जो कि निर्धन होते हुए भी अपने गौरव को बनाए रखते हैं। वास्तव में, वह एक अलौकिक वस्तु था। मेरे मन में आता है कि यदि मैं ब्लेक[1] के समान कवि होता तो इस साँप पर एक ऐसी ही कविता लिखता जैसी कि उसने सिंह के सम्बन्ध में लिखी थी। उस सुन्दर कविता में ब्लेक ने यह प्रश्न किया है, "क्या उसी ईश्वर ने सिंह को बनाया है, जिसने कि भेड़ के बच्चे की रचना की है ?" मैं भी यह प्रश्न कर सकता था, "क्या उसी ईश्वर ने, जिसने मेंढक को बनाया है, साँप की भी रचना की है ?"

इस साँप को तो हमने प्रातःकाल देखा था। उसी दिन सायंकाल, सैर करते हुए, एक और सड़क पर हमने एक और साँप देखा। वह उसी साँप के समान था। जिसे कि हमने उसी दिन प्रातःकाल के समय देखा था। परन्तु उसमें एक अन्तर था। वह एक आलसी और अधमरा-सा जीव था। उसकी चाल-ढाल में कोई आकर्षण न था, आँखों में कोई ज्योति न थी. और न ही चमड़ी में कोई चमक। वह बहुत सुस्त व ढीला-ढाला था। यदि पहले साँप को अपनी जाति के गौरव का प्रतिनिधि माना जाए, तो वह उसकी

१. ब्लेक (१७५७-१८२७) : एक रहस्यवादी अंग्रेज कवि।

गिरावट का प्रतीक था । अस्तु, हम उसे दूर से ही देखते रहे जब तक कि वह सड़क के समीप की कुछ झाड़ियों में न जा छिपा । आपको आश्चर्य होगा कि हमने उसे मारने का यत्न क्यों नहीं किया । सच बात तो यह थी कि उस समय हमारा प्राणिमात्र के प्रति ऐसा प्रेमभाव था कि एक सांप भी हमारे लिए एक सुन्दर पदार्थ था ।

अगले दिन प्रातःकाल हम फिर भ्रमण के लिए निकले । कुछ दूर जाने पर हमने लड़कों के एक झुण्ड को देखा । उनकी बातचीत बड़ी उत्तेजना-पूर्ण थी । हमें शीघ्र ही पता चल गया कि उन्होंने एक सांप मारा है । उनमें से एक उसे एक लकड़ी पर एक विजय चिन्ह के समान उठाए ले जा रहा था । इन लड़कों व हममें कितना अन्तर था । उनके लिए एक सांप शत्रु था, जिसका नाश करना आवश्यक था । उनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण सामरिक (युद्धमूलक) था ।

परन्तु सांपों ने तो अपना काम कर ही लिया था । कुछ वर्ष पहले मैंने एक अंग्रेज की उस यात्रा का वर्णन पढ़ा था, जो कि उसने युद्ध से पहले जर्मनी में की थी । उस देश में तीन सप्ताह तक ठहरने का यह प्रभाव हुआ कि उसके लिए यहूदी एक हौआ-सा हो गए । इसी प्रकार उस हिल स्टेशन पर थोड़े दिन ठहरने के बाद मुझे दिन-रात सांपों के सपने आने लगे । फिर मैंने शीघ्र ही वहाँ से कूच कर दिया । इस हिल स्टेशन ने मुझे अब तीसरी बार निराश किया था ।